चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

1986 से प्रकाशित | 14 नवंबर- 20 नवंबर 2016 | नई दिल्ली | हर शुक्रवार को प्रकाशित | Postal Regn. No. DL (ND)-11/6139/2015-17, RNI No. DELHIN/2009/30467

बलूचिस्तान

भारत की मदद से निर्वासित सरकार बनाएंगे

फोटो- सुनील मल्होत्रा

बलूच लीडर नायला क़दीर बलोच पिछले दिनों भारत यात्रा पर थीं. इस दौरान दिल्ली में चौथी दुनिया के प्रधान संपादक संतोष भारतीय ने उनसे बलूचिस्तान आंदोलन से जुड़े हर एक पहलू पर विस्तार से बातचीत की. नायला क़दीर बलोच ने इस इंटरव्यू में कश्मीर से लेकर बलूचिस्तान, पाकिस्तान और अपनी निजी ज़िंदगी के बारे में बेबाकी से अपनी बातें रखीं...

संतोष भारतीय

कश्मीर को लेकर कुछ कहना चाहेंगी?

पहले यह तय करना होगा कि कश्मीर की जो पहचान है, वह धार्मिक है या राष्ट्रीय है. अगर धार्मिक है यानी मुसलमान को यह चाहिए, मुसलमान को वह चाहिए, तो मुसलमान तो पूरी दुनिया में रहते हैं और हिंदुस्तान में दुनिया भर से ज्यादा मुसलमान रहते हैं. जितने टुकड़ों में आप मुसलमानों को काटोगे, वे उतने ही माइनॉरिटी में होते चले जाएंगे. पाकिस्तान जब भारत से अलग हुआ, तो सिर्फ अंग्रेज़ों को ख़ुश करने के लिए और अंग्रेज़ों का प्रॉक्सी बनने के लिए उन्होंने अपनी भारत मां से ग़द्दारी की.

हम कश्मीरी लोगों के हक़ के हिमायती हैं. हम ऐसा नहीं कह सकते कि हमें अपना हक़ चाहिए और कश्मीरी को हक़ नहीं दिया जाना चाहिए, लेकिन क्या कश्मीर कभी एक अलग मुल्क था. हिंदुस्तान में जो विविधता है, क़ौमों की, ज़ुबानों की और जो 50 से ज्यादा स्टेट्स रही हैं यहां, वे सभी हिंदुस्तान का हिस्सा रही हैं. कश्मीर अगर अपनी भारतीय पहचान और कश्मीरी पहचान दोनों को रखे, तो इस स्थिति में कश्मीरी, चीन और पाकिस्तान का शिकार बनने से बच सकते हैं. अगर वे यह समझते हैं कि उनकी पहचान मुस्लिम की है, तो जो हिंदू कश्मीरी हैं, वे कहां जाएं? अगर वे समझते हैं कि मुस्लिम पहचान के आधार पर मुल्क बना सकते हैं, तो इसका अनुभव पाकिस्तान ने किया और यह नाकाम अनुभव रहा है.

सबसे पहले पूरे उपमहाद्वीप में हिंदू-मुस्लिम के नाम पर जो बंटवारा हुआ, वह बंगाल का हुआ. बंगाल ने उसके क्या परिणाम देखे, सब जानते हैं. पहले अंग्रेज़ों ने उसके दो टुकड़े किए, फिर पाकिस्तान के अत्याचार में पाकिस्तानी सैनिकों के हाथों 30 लाख लोग मारे गए. एक लाख औरतें रेप के कारण प्रेग्नेंट हुईं. 30 लाख बंगालियों के बाद 40 लाख अफ़ग़ान, पाकिस्तानी सैनिकों ने मारे. इसके अलावा अफ़ग़ानी महिलाओं का रेप, उनका ट्रेड, ये सब कुछ हुआ. जितनी पुरातत्व संपदा थी अफ़ग़ानिस्तान में, वह सब पाकिस्तानी लूट कर ले गए और बेचे, कुछ भी नहीं छोड़ा. अब तक वे अफ़ग़ानिस्तान को जीने नहीं दे रहे, तो क्या अफ़ग़ान मुसलमान नहीं हैं. आज बलोचों पर जो अत्याचार पाकिस्तान कर रहा है, तो क्या बलोच मुसलमान नहीं हैं. इस पूरे उपमहाद्वीप में सबसे पहले यदि कोई मुसलमान था, तो वे बलोच थे. तो आप उन बलोचों को मार रहे हो, जिनसे आपने इस्लाम सीखा था. इतने सब के बाद भी क्या कश्मीरियों को पाकिस्तान पर विश्वास करना चाहिए?

मैं एक बहुत ही सीरियस एडवाइज़ यह दूंगी कि पाकिस्तान को कश्मीर, कश्मीरियों के इस्लाम या कश्मीरियों के इंसान होने से कोई मतलब नहीं है. पाकिस्तान को कश्मीर का पानी चाहिए. उसे कश्मीर की स्ट्रैटेजिक पोज़िशन चाहिए और यह सब पाकिस्तान से ज्यादा चीन को चाहिए. आज जो पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले कश्मीर का हाल है, क्या वह आज़ाद है, क्या वहां पर लोगों पर अत्याचार नहीं हो रहे हैं? क्या वहां पर पाकिस्तान ने मिलिटेंट, आत्मघाती हमलावर और धार्मिक कट्टरवादी नहीं भर दिए हैं? क्या वहां पर पाकिस्तानी आर्मी की मौजूदगी नहीं है? कश्मीर, गिलगित और बलतिस्तान में आज सिर्फ पाकिस्तान आर्मी ही नहीं, चीन की आर्मी भी मौजूद है.

कश्मीरियों को यह देखना चाहिए कि वे अपनी आज़ादी किससे मांग रहे हैं, पाकिस्तान से, हिंदुस्तान से या चीन से. यूएन का डिक्लेरेशन था कि जनमत संग्रह से पहले कश्मीर को मिलिट्री फ्री किया जाएगा, लेकिन पाकिस्तान ने तो उसको मिलिटराइज़ कर दिया. कश्मीरी यह देखें कि वे किस खेल का हिस्सा बन रहे हैं? मैं भारत सरकार से भी कहना चाहूंगी कि कश्मीरियों को और स्पेस दें. अगर ये गुमराह हैं या किसी ग़लतफ़हमी के शिकार हैं या ज़ुल्म के शिकार हैं, तो आप इन्हें गले लगाएं, इनके मसले हल करें. जिस तरह से आप सब भारत पर हक़ रखते हैं, कश्मीरियों का भी उसी तरह से भारत पर हक़ है. कश्मीरियों से मैं यह कहूंगी कि आप पाकिस्तान के हाथों गुमराह मत हों. पाकिस्तान का इस्लाम से उतना ही ताल्लुक़ है, जितना कि किसी क़साई का बकरी से, क्योंकि जितने मुसलमान दुनिया में पाकिस्तान ने मारे हैं, उतने किसी ने नहीं मारे. बंगाल, अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान या फिलिस्तीन में जितनी मुसलमान औरतों का पाकिस्तान ने रेप किया है और जितनी लूट-मार मुसलमानों के संसाधनों की की है और किसी ने नहीं की. ये इतिहास कश्मीरियों के सामने है, वे इसे देख लें और इसके बाद भी अगर वे पाकिस्तान पर यक़ीन करना चाहते हैं, तो करें.

अपने बारे में बताइए. कहां पैदा हुईं, मां-बाप, भाई-बहन के बारे में बताइए. आम बलोच औरतें तो राजनीति में नहीं आतीं, फिर आप कैसे आईं?

मेरा ताल्लुक़ बुनियादी तौर पर एक उच्च शैक्षिक परिवार से है. मेरे फादर और मेरे अंकल बलूचिस्तान के मूवमेंट में शामिल रहे हैं. वे दोनों स्वतंत्र बलूचिस्तान को बनाने के बाकू में हुए साइंटिफिक फैसले के बाद से एक्टिव थे. बलोच स्टूडेंट ऑर्गनाइजेशन (बीएसओ) की बुनियाद रखने और नेशनल अवामी पार्टी को बनाने में मेरी फैमिली का रोल रहा है.

मैं जब पैदा हुई, उस वक्त जंग का माहौल था और मिलिट्री ऑपरेशंस जारी थे. जब मुझे कुछ होश हुआ, उस वक्त भुट्टो का मिलिट्री ऑपरेशन चल रहा था. चारों तरफ आग, धुआं और बारूद था. जो फ्रीडम फाइटर्स थे, वे अक्सर मेरे घर आया करते थे. बीएसओ के लोगों को बेड़ियां और ज़ंज़ीरें पहना कर कोर्ट में लाया जाता था. मेरे पापा वकील हैं, वे उनका केस फ्री में लड़ते थे, उन्हें लीगल एड देते थे. नेशनल अवामी पार्टी के नेता जैसे ख़ैर बख्श मरी, गुल ख़ान नसीर, उन्हा साहब, बाबू सोरिस, मीर अब्दुल अजील कुर्द जैसों की लीगल सपोर्ट मेरे फादर और अंकल के ऑफिस से ही होती थी. बचपन से ही मैं एक ऐसे माहौल में पली-बढ़ी, जो बलोच नेशनलिज्म का गढ़ था. भले ही उस समय मुझे उन सबकी बातें समझ में नहीं आती थीं, लेकिन उस समय से ही मेरे अंदर बहुत गहरा जज्बा था. वे लोग भी मुझे एक छोटे बच्चे की तरह नहीं, बल्कि एक साथी की तरह डील करते थे. मेरी वालदा भी बहुत स्ट्रॉन्ग थीं, वे वूमेन राइट्स के लिए काम करती थीं. शायद वह स्ट्रॉन्गनेस हमारी जीन में ही है. बचपन से ही मेरे फादर और मेरी मदर ने मुझे बहुत प्राइड स्ट्रेंथ और कॉन्फिडेंस दिया. पहला जो गर्ल्स ऑर्गनाइज़ेशन बना बलोच स्टूडेंट का, वह मैंने ही अपने स्कूल में बनाया. उस समय मैं पांचवीं में पढ़ती थी. बीएसओ बलोचों के लिए एक एसेट है. यह एक ऐसी संस्था है हमारे पास, जो हमारे यूथ की ट्रेनिंग करता है, हमें हमारी हिस्ट्री बताता है, हमें ऑर्गनाइज़ेशन बनाना बताता है. हमें बीएसओ के माध्यम से वो सारी ट्रेनिंग दी जाती है, जो हमें अपनी राष्ट्रीय भावना और बलोच पहचान के साथ जोड़े रखती है.

जब मैं कॉलेज में पहुंची, तो पोएट्री भी करती थी, लिखती भी थी. उस वक्त हमीद बलोच हमारे बीएसओ के लीडर थे. उस समय ज़िया-उल-हक़ का (शेष पृष्ठ 2 पर)

बलूचिस्तान का इतिहास दमन और संघर्ष की कहानी है | P-4

अफ्स्पा से सियासी जंग लड़ेगी 'प्रजा' | P-5

केरल की रक्तरंजित राजनीति | P-7

बलूचिस्तान

भारत की मदद से निर्वासित सरकार बनाएंगे

पृष्ठ 1 का शेष

मार्शल लॉ था और हमीद बलोच को डेथ सेंटेंस सुनाई गई. उन लोगों की कोशिश थी कि हमीद बलोच को एक क़ातिल के तौर पर पेश किया जाय. हालांकि उनको कोर्ट ने बरी कर दिया था, उन्होंने किसी का मर्डर नहीं किया था. जिसके मर्डर का उनपर इल्ज़ाम था, वह आदमी ख़ुद कोर्ट में आकर बोल चुका था कि मैं तो ज़िंदा हूं, लेकिन वे कैसे भी हमीद को फांसी देना चाहते थे. उस समय इन सबके ख़िलाफ़ एक अजीब तरह की ख़ामोशी थी. उस ख़ामोशी को भी मैंने तोड़ा. हमारा गर्ल्स कॉलेज क्वेटा कैंट के अंदर था. वहां पर हमने बीएसओ का अपना यूनिट स्ट्रॉन्ग किया था. हम कॉलेज की दीवारें फांद कर बीएसओ के जलसे-जुलूसों में जाया करते थे. हमने उस समय क्लासेज़ का बायकॉट किया. हम गर्ल्स कॉलेज से सड़कों पर बाहर आ गए. हमने प्रोटेस्ट किया और हमीद बलोच को एक नेशनल हीरो के तौर पर पेश किया, जिन्हें वे लोग क्रिमिनलाइज़ करना चाहते थे. उस वक्त बूलान मेडिकल कॉलेज में बीएसओ के बॉयज़ की मीटिंग हो रही थी. उसमें लोगों को शांत करने की कोशिश की जा रही थी, लेकिन जब उन्हें यह खबर मिली कि गर्ल्स कॉलेज सड़कों पर आ गई हैं, तो वे लोग भी बाहर आकर प्रोटेस्ट करने लगे. उसके बाद हमीद बलोच के समर्थन में ऐसा प्रोटेस्ट फैला कि उसे कंट्रोल करना मुश्किल हो गया. हमीद को तो हम बचा नहीं सके, उसे उन लोगों ने फांसी दे दी, लेकिन जो वह ज़िर्व करता था, जो हीरो की सलामी और सैल्यूट वह ड़िर्व करता था, वो हमने उसे दिया. उसके बाद मुझे गर्ल्स कॉलेज से निकाल दिया गया. मेरी पढ़ाई बहुत डिस्टर्ब हुई.

मैं जब यूनिवर्सिटी में आई, उस समय भी मैं बीएसओ की लीडर थी. हमने उस समय वूमेन एक्टिविज़म भी शुरू कर दिया था. उस वक्त मेरा ज्यादा विरोध ऑनर किलिंग के ख़िलाफ़ था. उसे स्याहकारी भी कहा जाता था. उसे रोकने के लिए हमने मुहिम चलाई. मेरे जो साथी थे, वे मेरी उस मुहिम से परेशान हो गए, क्योंकि उस वक्त तक यह टेरर था कि अच्छी लड़कियां स्याहकारी का लफ्ज़ अपने मुंह से नहीं निकालती थीं. हमने इसका विरोध किया और कहा कि हमें इसलिए यह लफ्ज़ नहीं बोलने दिया जाता, ताकि इसका टेरर क़ायम रहे. हम इसे इतना बोलेंगे, इतना बोलेंगे कि इसका टेरर तोड़ दें. उस मूवमेंट में मैंने पॉलीटिकल पार्टीज़ और धार्मिक नेताओं के साथ लॉबिंग की. बलूचिस्तान के हाईकोर्ट से 'नो मोर क्राइम ऑफ पैशन' का निर्णय आया. उसमें कहा गया कि इसे मर्डर की तरह डील किया जाएगा. इसे लागू कराने और इसके समर्थक औरतों और मर्दों को भी बचाने के लिए हमने प्रयास किया. इस मुद्दे को हमने यूएन में भी पहुंचाया. वहां हमने मांग की कि इसे प्रायोरिटी इश्यू में रखा जाय और इसे औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा के रूप में देखा जाय. इसमें हम कामयाब भी हुए.

मेरा जो लाइफस्टाइल है, वो बलोच राइट्स रहा है. मैं यूनिवर्सिटी में गई, तो उस समय जो बलोच लड़कियां वहां पढ़ती थीं, वो पाकिस्तानी ड्रेस पहनती थीं, बलोच ड्रेस नहीं पहनती थीं. हमने बलोच ड्रेसेज़ पहननी शुरू की. यूनिवर्सिटी के साथ-साथ, ऑफिसेज़ में, प्रजेंटेशंस में या दुनिया में जहां कहीं भी गई, बलोच ड्रेसेज़ में ही गई. हमारा बलोच ड्रेस, ख़ुद हमारा एक झंडा है. हम जहां कहीं भी जाएं, साथ में बलूचिस्तान की पहचान होनी चाहिए.

1995 में बीजिंग में, जो फोर्थ वर्ल्ड वूमेन कॉन्फ्रेंस हुई थी, उसमें भी हमने इस मुद्दे को उठाया. वो एक महीने की कॉन्फ्रेंस थी और उसमें पूरी दुनिया से 40 हजार औरतें जमा हुई थीं. उसमें इसपर बात हुई कि पूरी दुनिया में महिलाओं की जो समस्याएं हैं, उनका समाधान कैसे किया जाए? उसमें हर रीजन के अपने-अपने कैंप्स थे. एक साउथ एशियन कैंप भी था, जिसमें भारत, पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, सऊदी अरब सभी के कैंप्स थे, लेकिन बलूचिस्तान का कैंप नहीं था. यह देखकर मुझे बहुत धक्का लगा कि इसमें मेरा मुल्क क्यों नहीं. मैं उसी वक्त वापस होटल गई और अपना सब सामान लाकर मैंने बलूचिस्तान का कैंप लगा दिया. यह देखकर पाकिस्तानी औरतें गुस्सा हो गईं. उन्होंने पाकिस्तानी कपड़े पहने हुए थे. उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हें तो पाकिस्तानी कपड़े पहनने चाहिए. मैंने कहा कि नहीं, मैं तो बलोच हूं. वे मुझसे लड़ने-भिड़ने पर आ गईं. उसी वक्त वसीमा किरमानी आईं, जो वहां डांस के ज़रिए एक्टिविज़म करती हैं. उन्होंने कहा, देखो, हम सब मोहनजोदाड़ो की तहज़ीब के लोग हैं और हम सबको एक होना चाहिए. तुम भी आ जाओ और पाकिस्तान के साथ एक स्टॉल कर लो, बलूचिस्तान का कैंप छोड़ दो. मैंने कहा कि अगर मोहनजोदाड़ो की तहज़ीब है, तो उससे 7000 साल पहले की तो मेरगढ़ की तहज़ीब है. मैं अपनी मेरगढ़ की तहज़ीब पर खड़ी हूं. मोहनजोदाड़ो तो मेरगढ़ की ग्रैंड डॉटर है. अगर यही करना है, आपको तहज़ीब की बुनियाद पर ही रहना है, तो फिर आपने पाकिस्तान का कैंप क्यों लगाया है, आप भारत के कैंप में शामिल हो जाइए. मैंने अपना कैंप बनाए रखा. उस वक्त हमारी जो यह इंडिपेंडेंस मूवमेंट है, वह नहीं थी. उस समय पाकिस्तान की पूरी सिविल सोसायटी मेरे ख़िलाफ़ हो गई. वे ख़ुद को लिबरल कहते हैं, फेमिनिस्ट कहते हैं, लेकिन बलूचिस्तान को स्वतंत्र देखना नहीं चाहते.

पाकिस्तान की सिविल सोसायटी कभी भी हमारे साथ नहीं खड़ी हुई. इसका कारण ये है कि वे भी हिस्सेदार हैं, पाकिस्तानी आर्मी की उस लूट-मार में, जो वे बलूचिस्तान में करते हैं. जब पाकिस्तान आर्मी बलूचिस्तान से गैस लूट कर ले जाती है, या सोना लूट कर ले जाती है, उसमें सब हिस्सेदार होते हैं. अगर ये उसमें हिस्सेदार नहीं हैं, तो ऐलान करें ना कि बलोचों के ख़ून की क़ीमत पर ये जो ब्लड गैस आ रही है, इसे हम इस्तेमाल नहीं करेंगे. लेकिन ये ऐसा नहीं करेंगे. ये चाहते हैं कि बलोच लुटते रहें और हम फैशन करके दुनिया के सामने फेमिनिस्ट बनी रहें. एक ज़बीन महमूद हैं, जिनको हम कह सकते हैं कि उन्होंने जुर्रत की और बलोच मिसिंग पर्सन्स के ऊपर स्टैंड लिया और एक प्रोग्राम किया. लेकिन उसके बाद आईएसआई ने उनका मर्डर कर दिया.

मेरा जो लाइफस्टाइल है, वो बलोच राइट्स रहा है. मैं यूनिवर्सिटी में गई, तो उस समय जो बलोच लड़कियां वहां पढ़ती थीं, वो पाकिस्तानी ड्रेस पहनती थीं, बलोच ड्रेस नहीं पहनती थीं. हमने बलोच ड्रेसेज़ पहननी शुरू की. यूनिवर्सिटी के साथ-साथ, ऑफिसेज़ में, प्रजेंटेशंस में या दुनिया में जहां कहीं भी गई, बलोच ड्रेसेज़ में ही गई. हमारा बलोच ड्रेस, ख़ुद हमारा एक झंडा है. हम जहां कहीं भी जाएं, साथ में बलूचिस्तान की पहचान होनी चाहिए. हमारी आज़ादी की लड़ाई 2000 के बाद शुरू हुई. हमारी इस लड़ाई में, जो हमारा हीरो था, है और रहेगा, वह है, बालाच मरी. फ्रीडम के लिए बालाच के ऐलान ने हमें भी जगाया. उसके ऐलान में इतनी जुर्रत थी और इतनी ईमानदारी थी कि हम सब उठ खड़े हुए. हम सबके अंदर भी आज़ादी के लिए लड़ने की चाह थी, लेकिन हम समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करना है, कैसे करना है. बालाच की बातों से हमें समझ में आया कि अगर हम नहीं उठे, तो इतिहास में दफ़न हो जाएंगे. अब जिस तरह से हमपर अत्याचार हो रहा है, जो ग्वादर मेगा प्रोजेक्ट के बाद से और बढ़ा है, हमें इसके ख़िलाफ़ होना पड़ेगा, वरना हम ख़त्म हो जाएंगे. बालाच जंग लड़ते हुए सरलट के क़रीब शहीद हो गए. उनकी कमी पूरी नहीं हो पाएगी, लेकिन हम समझते हैं कि हर बलोच जो फ्रीडम फाइटर है, वह बालाच ही है. मेरा प्लान है कि बालाच के नाम पर हम एक फिल्म बनाएं. पिछली बार जब मैं अप्रैल 2016 में भारत आई थी, तो मुंबई के कई फिल्म प्रोड्यूसर्स से मैंने बात की थी. उस फिल्म का नाम 'बालाच' होगा, लेकिन फिल्म का हीरो सिर्फ बालाच नहीं है, बल्कि हमारी जो मूवमेंट है, वह हीरो है. अभी मेरा प्लान है गुजरात जाने का, गुजरात के बाद मुंबई जाने का, तो हो सकता है कि हम उस फिल्म को लॉन्च करें.

अभी कुल मिलाकर आप दुनिया से क्या उम्मीद कर रही हैं? भारत के अलावा कौन से देश हैं, जो बलोचों के सपोर्ट में आए हैं

भारत के अलावा बांग्लादेश हमारे समर्थन में आया है. अफ़ग़ानिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति ने हमारा समर्थन किया है, लेकिन अभी तक वहां की मौजूदा सरकार ने कुछ ऐलान नहीं किया है. मैंने काबुल में प्रेस कॉन्फ्रेंस की थी, वहां रहने वाले 4 मिलियन बलोचों के संगठन के जो हेड हैं, रिटायर्ड जनरल करीम ब्राहवी, वे मेरे साथ थे. साथ ही अफ़ग़ानिस्तान के यूथ लीडर्स भी हमारे साथ थे. उन सबने सपोर्ट किया बलूचिस्तान की स्वतंत्र सरकार के मुद्दे का. हमने अफ़ग़ानिस्तान की सरकार से रिक्वेस्ट की कि जिस तरह से भारत की सरकार ने और भारत के पीएम नरेंद्र मोदी जी ने बलोचों के समर्थन में आवाज़ उठाई है, वैसे ही अफ़ग़ानिस्तान की सरकार को भी हमारे लिए आवाज़ उठानी चाहिए. हमें सार्क के और देशों से भी समर्थन की उम्मीद है. यूरोप के देशों, अमेरिका, और अरब देशों से भी हम समर्थन की मांग कर रहे हैं. यूएन में भी हमारे नुमाइंदे हैं. बाक़ी सब जगहों पर कांग्रेस मैन हैं, पार्लियामेंटेरियंस हैं. सरकार के अंदर ऐसे लोग हैं, जो हमारे साथ हमदर्दी रखते हैं या हमारे समर्थन में खुलकर बोलते हैं, लेकिन अभी तक भारत और बांग्लादेश के अलावा किसी भी स्टेट की तरफ से हमारे समर्थन का डिसीज़न नहीं आया है.■

feedback@chauthiduniya.com

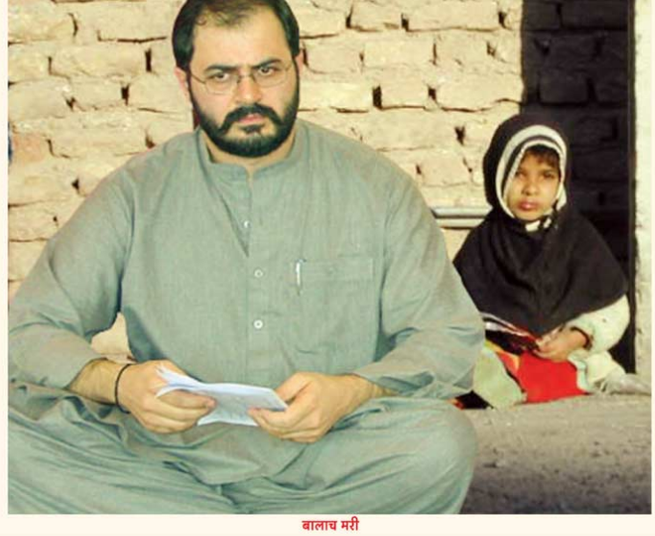

बालाच मरी

चौथी दुनिया
हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

वर्ष 08 अंक 37
14 नवंबर- 20 नवंबर 2016

RNI-DELHIN/2009/30467

संपादक
संतोष भारतीय

संपादक समन्वय
डॉ. मनीष कुमार

एडिटर (इंवेस्टिगेशन)
प्रभात रंजन दीन

सहायक संपादक
सरोज कुमार सिंह (बिहार-झारखंड)
सरयू भवन, वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
हरीलाल स्वीट्स के निकट, पटना-800001
फोन: 0612 3211869, 09431421901

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63 नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.
संपादकीय 0120-6451999
6450888
विज्ञापन व प्रसार 022-42296060
+91-8451050786
+91-9266627379
फैक्स न. 0120-2544378

पृष्ठ-16+4 (बिहार-झारखंड, उत्तर प्रदेश-उत्तराखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुन: प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त क़ानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

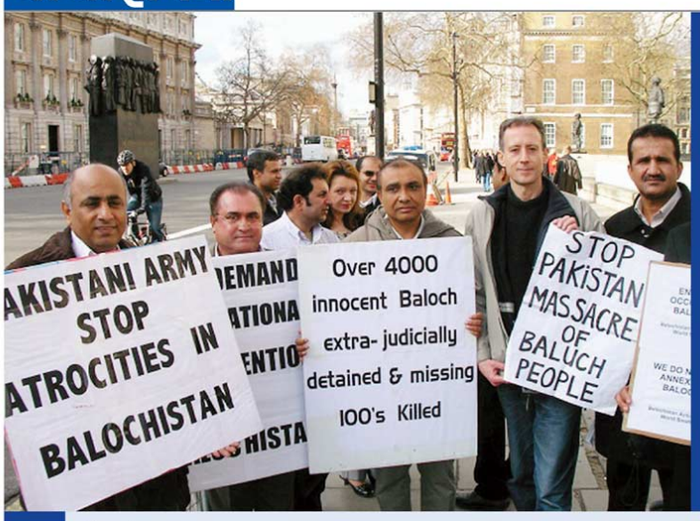

भारत की मदद से निर्वासित सरकार बनाएंगे

नायला क़दीर बलोच

बलूचिस्तान की सभ्यता दुनिया की सबसे पुरानी शहरी सभ्यता है. यह ग्यारह हज़ार साल पुरानी है. इसी सभ्यता में ज्योमिट्री, केमिस्ट्री, कैलेंडर, प्रोटोराइटिंग, व्हील इत्यादि चीजें ईजाद हुईं. यह एक मातृसत्तात्मक समाज था, इसलिए यहां पर अमन का राज था. यही अमन-चैन मीरगढ़ की सभ्यता का सूचक था. हर चीज़ वहां से मिली, लेकिन हथियार नहीं मिला. बलोच की जो साइकोलॉजी है, उसमें गुलामी नहीं है, बलोच हमेशा स्वतंत्र रहा है. बलोच इस जमीन पर हज़ारों साल से रह रहे हैं. बलूचिस्तान एक बहुत बड़ा मुल्क है, जिसके पास लगभग 2000 किमी का समुद्र है, पहाड़ हैं, रेगिस्तान हैं, मैदान हैं. यहां की ज़मीन बहुत उर्वर है. कम आबादी वाले बलोचों द्वारा इनकी हिफ़ाज़त करने या इन्हें संभाले रखने के लिए एक विज़डम की ज़रूरत रही है. उस विज़डम के साथ बलोच हमेशा सर्वाइव करता रहा है.

हमारी कोशिश ये रही है कि अपने पड़ोसी देशों के साथ अच्छे से रहें, जिनमें एक तरफ हिंदुस्तान है, एक तरफ अफ़ग़ानिस्तान, एक तरफ ईरान और दक्षिण में अरबियन देश हैं. लेकिन जब किसी ने आक्रमण या हमले की कोशिश की है, तो बलूचिस्तान के बच्चे, बूढ़े, औरतें, मर्द, सभी एक साथ उसका सामना करने को आगे आते रहे हैं. हम सब प्राकृतिक लड़ाके हैं. हमारे पास रेगुलर आर्मी नहीं थी, लेकिन हम सब किसी भी हमले के लिए तैयार रहा करते थे. बलूचिस्तान में ही सिकंदर को हार मिली और यहीं पर वह बीमार हुआ. यहीं पर पुर्तगालियों को शिकस्त मिली, हमने बर्तानिया के साथ समझौता किया. उपमहाद्वीप पर बर्तानिया का क़ब्ज़ा था, लेकिन बलूचिस्तान पर उनकी हुक्मरानी नहीं थी. उस समय भी बलूचिस्तान स्वतंत्र रहा.

27 मार्च 1948 को पाकिस्तान ने बलूचिस्तान की 705 साल पुरानी सरकार को तोड़ा और बलूचिस्तान पर क़ब्ज़ा कर लिया. उसी समय से बलूचिस्तान में मिलिटेंट वाली स्थिति बनी हुई है. तब कबीर ख़ान ने बलूचों के लिए लड़ाई लड़ी थी, जो बलूचिस्तान के महाराजा के छोटे भाई थे. पाकिस्तान ने हमेशा हिंसा के ज़रिए बलूचिस्तान को कंट्रोल में रखने की कोशिश की है. पाकिस्तान में भले ही लोकतंत्र आया या गया, लेकिन बलूचिस्तान हमेशा पाकिस्तानी फौज के कब्ज़े में रहा. बलोच के निवासी 69 साल से पाकिस्तानी सेना द्वारा टॉर्चर होते रहे हैं. तब से अब तक कितने ही बलोच गिरफ्तार हुए, लापता हुए, मारे गए. इस वक्त बलूचिस्तान में युद्ध वाली स्थिति है, आज़ादी की जंग इस समय पूरे चरम पर है. पूरे बलूचिस्तान में पहली बार बलोच एक साथ मिलकर लड़ रहे हैं.

आज़ादी की लड़ाई में आज बलूचिस्तान के कोने-कोने से लोग शामिल हैं. ऐसा पहले नहीं था, पहले कोई हिस्सा इस जंग में शामिल था, तो कोई नहीं था. पाकिस्तान में जब चुनाव हुआ, तो बलोच फ्रीडम ऑर्गेनाइज़ेशंस ने घोषणा की कि चुनाव में हिस्सा नहीं लेना है, क्योंकि हमें पाकिस्तान की संसद और इसकी व्यवस्था का हिस्सा नहीं बनना है. इसी का असर था कि वहां सिर्फ तीन प्रतिशत वोट पड़े. इसके बाद भी वहां सरकार बनी. जहां लाखों की आबादी वाली विधानसभा हो, वहां सिर्फ 600 वोट लेकर कोई मुख्यमंत्री बन जाय, यह तो पूरी तरह से मजाक है. इस तरह से बनने वाली सरकार पूरी तरह से अवैध थी.

बलूचिस्तान में जो आज़ादी की लड़ाई है, उसकी एक अच्छी बात यह है कि हम भले ही किसी भी फ्रंट पर या किसी भी तरीक़े से आज़ादी का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन सबका मत एक है. वह चाहे अहिंसा के द्वारा आज़ादी मांगने वाले हों, राजनीतिक रूप से लड़ने वाले, मिलिटेंट स्ट्रगल या डिप्लोमेसी-लॉबिंग करने वाले, सब इस बात से सहमत हैं कि एक साथ मिलकर बलूचिस्तान को आज़ादी दिलानी है. भारत ने जो अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ी थी, उसमें वैचारिक मतभेद था. भगत सिंह, सुभाषचंद्र बोस और महात्मा गांधी के रास्ते अलग-अलग थे. लेकिन बलूचिस्तान में जो आज़ादी की लड़ाई चल रही है, उसमें सब संगठन वैचारिक रूप से एक हैं. कुर्द और बलोच, बलूचिस्तान के बाशिंदे रहे हैं, लेकिन आज ये दुनिया के दूसरे देशों में रह रहे हैं. आज दुनिया भर में 40 मिलियन कुर्द और 40 मिलियन बलोच हैं. ये 80 मिलियन लोग बिना अपने देश के रह रहे हैं. हालांकि दुनिया की ये दो बड़ी क़ौमें पहले एक ही थीं. पहले बलोच भी कुर्द ही कहलाते थे.

इस वक्त बलूचिस्तान का जो हाल है, वो यह है कि आज वहां बात मानवाधिकार के उल्लंघन से आगे बढ़ गई है. अभी वहां नरसंहार की स्थिति है. बलोचों पर पाकिस्तान के अत्याचार को देखकर ऐसा लगता है कि उसे एक क़ौम से, एक सभ्यता से और एक पहचान से नफरत है. वे बच्चों-बूढ़ों तक को मार देते हैं, पशुओं को भी नहीं छोड़ते. बलूचिस्तान में कई जगहों पर सौ-सौ से ज्यादा शव मिले हैं. कई सामूहिक क़ब्र मिले हैं. पाकिस्तान बलोचों के ख़िलाफ़ कैमिकल वेपन यूज़ कर रहा है. इन सब को देखते हुए यूनाइटेड नेशन्स की ज़िम्मेदारी बनती है कि बलूचिस्तान में फैक्ट फाइंडिंग मिशन भेजा जाय, ताकि पता चले कि जो हथियार बैन हैं, उनसे भी वहां कैसे लोगों को मारा जा रहा है. न जाने किस तरह के कैमिकल का इस्तेमाल कर लोगों को मारा जा रहा है कि शव की पहचान भी मुश्किल हो गई है? यहां तक कि पानी में भी ज़हरीला कैमिकल डाल दिया गया है, जिससे इंसान या जानवर पानी पीकर मर जा रहे हैं. जहां पर बलोच फ्रीडम मूवमेंट के लिए ज्यादा सपोर्ट है, वहां पर कैमिकल स्प्रे किया जा रहा है.

यह सरकार पूरे 40 मिलियन बलोचों की सरकार होगी. इसके लिए हमें भारत से लॉजिस्टिक सपोर्ट भी चाहिए. इससे पहले तिब्बत और बांग्लादेश की सरकार भी भारत के समर्थन से ही बनी थी. हम यह भी चाहते हैं कि हमारी सरकार को ऑटोनॉमस रहने दिया जाए. बलोच यह सरकार बनाएं और वे ही इसे चलाएं. इसका संविधान, अधिकार और सब कुछ बलोच का होना चाहिए. हमें भारत का सपोर्ट चाहिए, लेकिन हमारी सरकार के आंतरिक मामलों में हम उसका हस्तक्षेप नहीं चाहते हैं यानी हम पूरी तरह से ऑटोनॉमस रहें. उसके बाद हम यह चाहते हैं कि हम अपने राजनयिक पूरी दुनिया में भेजें, अपना पासपोर्ट जारी करें और जो बलोच पूरी दुनिया में फंसे हुए हैं, उन्हें हम भारत में बुला सकें और एक बलोच नागरिक के तौर पर उन्हें रख सकें. यह हमारे आज़ाद बलूचिस्तान के रोडमैप में बहुत बड़ा माइलस्टोन होगा.

टॉर्चर और रेप को पाकिस्तान की आर्मी बलोचों के ख़िलाफ़ एक औज़ार के तौर पर इस्तेमाल कर रही है. हमारे 30,000 से भी ज्यादा बलोच गायब हैं, जिन्हें पाकिस्तानी आर्मी उठा कर ले गई है. उनमें से कई हज़ार लोगों की लाशें मिली हैं. कई शवों से आंखें, दिल, गुर्दे और लीवर निकाल लिए गए हैं यानी पाकिस्तानी आर्मी मानव अंगों की तस्करी में भी शामिल है. कई शवों पर खंजर से काटकर पाकिस्तान ज़िंदाबाद लिखा होता है. कई हज़ार औरतों और बच्चों को भी पाकिस्तानी आर्मी उठा कर ले गई है. उनमें से कइयों को पाकिस्तानी आर्मी के रेप सेल्स में रखा गया है. बलूचिस्तान में बहुत कम स्कूल-कॉलेज हैं, लेकिन जो हैं, उनपर भी आर्मी ने कब्ज़ा कर लिया है, उन्हें अपने बैरक में बदल लिया है. इस वक्त वहां शिक्षा की स्थिति बहुत ख़राब है. हमारे पास स्वास्थ्य सुविधाएं भी नहीं के बराबर हैं.

अगर बलूचिस्तान के किसी हिस्से में बाढ़ या भूकंप आ जाए, तो दुनिया के किसी भी मानवतावादी संगठन को वहां जाने की इजाज़त नहीं है. पाकिस्तानी आर्मी ख़ुद वहां जाती है और बजाय लोगों की सहायता करने के, उनका क़त्लेआम करती है. पाकिस्तानी आर्मी ने बलूचिस्तान को एक नाज़ी कॉन्संट्रेशन कैंप में तब्दील कर दिया है. इस वक्त ज़रूरत है कि दुनिया बलोचों के नरसंहार को रोके.

चीन तो 50 के दशक से ही बलूचिस्तान में सक्रिय रहा है, वह हर दिन लगभग 16 किलो सोना वहां के खानों से निकालता रहा है. इस तरह की चोरियों के अलावा चीन ने अंतरराष्ट्रीय नियमों से बाहर जाकर पाकिस्तान को ख़ुफ़िया मदद दी और उससे परमाणु परीक्षण कराया. इन सबके अलावा बलूचिस्तान में लगातार 6 साल तक सूखा पड़ा, बारिश नहीं हुई, लाखों मवेशी मर गए. पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर बहुत बढ़ गई. अब चीन से पाकिस्तान के सीपैक के बाद हालत और ख़राब हुए हैं. ग्वादर मेगा प्रोजेक्ट के साथ बलूचिस्तान में चीन का हस्तक्षेप ज्यादा बढ़ गया है. वे लोग लाखों चीनियों और पाकिस्तान के नागरिकों को बलूचिस्तान में बसाना चाहते हैं. उनकी मंशा है कि बलूचिस्तान में बलोचों से ज्यादा बाहरी लोगों की आबादी हो जाय. वे चाहते हैं कि वहां से बलोचों की पहचान तक मिट जाय. जब बलोचों ने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई, तो उन्हें पाकिस्तान और चीन के नरसंहार का सामना करना पड़ रहा है. सीपैक के लिए रोड बनाने के लिए आर्मी जो सामान या मशीनें लेकर आती है, उन्हें स्थानीय बलोच जला देते हैं. जब तक बलोच नहीं चाहें, सीपैक नहीं बन सकता है और जिस तरह से चीन और पाकिस्तान बनाना चाह रहे हैं, इस तरह से तो बिल्कुल नहीं बनेगा.

15 अगस्त को दिल्ली के लाल क़िले से जिस तरह मोदी जी ने बलोचों के समर्थन में ऐलान किया, उससे बलोचों का हौसला बढ़ा है. पहली बार बलोचों को अहसास हुआ कि दुनिया में कोई है, जो खुले तौर पर हमारे समर्थन में आवाज़ उठा सकता है. इससे पहले अमेरिकन कांग्रेस में बलूचिस्तान के लिए एक बिल पेश किया गया था. ईयू की तरफ से भी बलोचों के समर्थन में बयान आया. लेकिन भारत के प्रधानमंत्री जैसे विश्वस्तर के ताकतवर और लोकप्रिय नेता की तरफ से जो बयान आया है, वह बलोचों के लिए एक बहुत बड़ा सपोर्ट है. इससे बलोच फ्रीडम मूवमेंट में तेज़ी आई है, इसके साथ ही पाकिस्तान द्वारा बलोचों के नरसंहार में भी तेज़ी आई है. अब वे ज्यादा निर्दयता से बलोचों पर अत्याचार कर रहे हैं. इस मुद्दे को सुषमा स्वराज जी ने यूएन में उठाया है, इससे इसका अंतरराष्ट्रीय महत्व और बढ़ गया है. लेकिन इससे आगे और भी बहुत कुछ करने की ज़रूरत है.

दो रास्ते हैं, जिनपर बढ़ा जा सकता है. पहला यह कि पाकिस्तान पर प्रतिबंध लगवाया जाय. पाकिस्तान को एक टेररिस्ट मुल्क घोषित किया जाय. सब जानते हैं कि पाकिस्तान एक आतंकी देश है, उसके पास एक ही एसेट है और वह है आतंक. भारत, अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान को जिस तरह से इसने आतंकियों के हवाले किया हुआ है, इसे खत्म करने के लिए पूरी दुनिया को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की ज़रूरत है. सबसे पहले पाकिस्तान की फंडिंग रोकने के प्रयास किए जाएं. जो पाकिस्तान को फंडिंग करते हैं, वे वास्तव में आतंक को पैदा कर रहे होते हैं, वे बलोचों का नरसंहार करवा रहे होते हैं. तो ज़रूरत है कि पाकिस्तान को अलग-थलग किया जाय. जब पाकिस्तान पर प्रतिबंध लगेगा, तब वह इस काबिल नहीं रहेगा कि आतंक फैला सके.

दूसरी जो स्ट्रैटजी है, वो ये है कि बलूचिस्तान की स्वतंत्र सरकार की स्थापना करने की कोशिश की जाय. इसके लिए हमें भारत सरकार का समर्थन चाहिए. इससे उन बलोच संगठनों को ताक़त मिलेगी, जो इसके लिए प्रयास कर रहे हैं. यह सरकार पूरे 40 मिलियन बलोचों की सरकार होगी. इसके लिए हमें भारत से लॉजिस्टिक सपोर्ट भी चाहिए. इससे पहले तिब्बत और बांग्लादेश की सरकार भी भारत के समर्थन से ही बनी थी. हम यह भी चाहते हैं कि हमारी सरकार को ऑटोनॉमस रहने दिया जाए. बलोच यह सरकार बनाएं और वे ही इसे चलाएं. इसका संविधान, अधिकार, और सब कुछ बलोच का होना चाहिए. हमें भारत का सपोर्ट चाहिए, लेकिन हमारी सरकार के आंतरिक मामलों में हम उसका हस्तक्षेप नहीं चाहते हैं यानी हम पूरी तरह से ऑटोनॉमस रहें. उसके बाद हम यह चाहते हैं कि हम अपने राजनयिक पूरी दुनिया में भेजें, अपना पासपोर्ट जारी करें और जो बलोच पूरी दुनिया में फंसे हुए हैं, उन्हें हम भारत में बुला सकें और एक बलोच नागरिक के तौर पर उन्हें रख सकें. यह हमारे आज़ाद बलूचिस्तान के रोडमैप में बहुत बड़ा माइलस्टोन होगा.■

feedback@chauthiduniya.com

बलूचिस्तान का इतिहास

दमन और संघर्ष की कहानी है

चौथी दुनिया ब्यूरो

भारत में बलूचिस्तान का मुद्दा सबसे पहले तब गरमाया, जब 2009 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री गिलानी के साझा बयान में इसका ज़िक्र हुआ था. 2016 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लाल किले से बलूचिस्तान का ज़िक्र कर इस मामले का अंतरराष्ट्रीयकरण करने की कोशिश की. जब तक मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री थे, तब तक भारत यह कहता आया था कि बलूचिस्तान के किसी भी मामले का भारत से रिश्ता नहीं है. लेकिन अब नरेंद्र मोदी ने खुले रूप से मदद देने की बात कही है. इस बदलाव से भारत को फायदा होगा या नुकसान, इसका आकलन करना फिलहाल मुश्किल है, लेकिन ये बात ज़रूर है कि बलूचिस्तान के लोगों को राहत मिली है. पहली बार बलूचिस्तान की बात अंतरराष्ट्रीय मंच पर उठी है. संयुक्त राष्ट्र में बलूचिस्तान का मामला उठा. जनरल एसेंबली के दौरान बलूच लोगों ने प्रदर्शन कर दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा. यूरोपियन यूनियन से मदद का भरोसा मिला. फिलहाल, मामला ये है कि कई बलूच नेता भारत के प्रति आभार प्रकट कर रहे हैं. बलूचिस्तान का मामला क्या है, बलूचियों की मांग क्या है, उनकी परेशानी क्या है, वहां पाकिस्तान की सरकार, सेना और आईएसआई क्या करती है? यह समझना जरूरी है.

पाकिस्तान का सबसे बड़ा राज्य है बलूचिस्तान. यह पाकिस्तान के दक्षिण पश्चिम में स्थित है, जो दक्षिण में अरब सागर, पश्चिम में ईरान और उत्तर में अफ़ग़ानिस्तान की सीमा से सटा है. यह पाकिस्तान के क्षेत्रफल का 43 प्रतिशत है, लेकिन जनसंख्या के हिसाब से यहां पाकिस्तान की कुल जनसंख्या के सिर्फ़ पांच प्रतिशत लोग ही रहते हैं. इसकी वजह यह है कि बलूचिस्तान का ज़्यादातर इलाक़ा पहाड़ और रेगिस्तान है. यहां पानी की कमी है, इसलिए जनसंख्या कम है. बलूचिस्तान की राजधानी क्वेटा है. यहां के मुख्य निवासी बलूच और पठान हैं. बलूचिस्तान पाकिस्तान का सबसे ग़रीब और विकास की धारा से सबसे दूर है. इसी बदहाली का नतीजा है कि लोग पाकिस्तान की हुकूमत को अपना नहीं मानते हैं. बलूचिस्तान में खनिज पदार्थों का भंडार है, लेकिन यहां के लोग ग़रीब हैं. इस राज्य की साक्षरता दर सबसे कम है. पाकिस्तान की सरकार बलूचिस्तान के लोगों को शिक्षा, रोज़गार, पीने का साफ पानी, स्वास्थ्य सेवा आदि ज़रूरत की चीज़ें मुहैया कराने में असफल रही है. लोग अपनी परेशानियों को लेकर आंदोलित हैं. उनकी सुनने वाला कोई नहीं है, इसलिए आए दिन बलूचिस्तान से हिंसा की ख़बरें आती रहती हैं. जब भी लोग अपनी समस्याओं को लेकर आंदोलन करते हैं, तो पाकिस्तान की सरकार और एजेंसी इन्हें कभी आतंकवादी तो कभी भारत का एजेंट बताकर उनके ख़िलाफ़ सैनिक कार्रवाई करती है. बलूचिस्तान में हिंसा का एक और कारण है, अफ़ग़ानिस्तान से आए पश्तून शरणार्थी, जो यहां की डेमोग्राफी को बदल रहे हैं. इनमें कुछ ऐसे भी हैं, जो आतंकवादियों के समर्थक हैं. वास्तव में बलूची एक सेकुलर समुदाय है. उनको लगता है कि धर्मनिरपेक्ष बलूच राष्ट्रवाद को ख़त्म करने के लिए एजेंडे के तहत इस्लामाबाद ने जानबूझ कर रिफ्यूजियों के लिए सीमा खोल दिया है. आज हालात ये है कि बलूचिस्तान सीधे तौर पर आईएसआई के अधीन है और वह यहां चल रहे आंदोलन को बाहरी ताक़तों की करतूत बता कर अपनी चाल चल रही है. पाकिस्तान की जनता को भ्रमित करने के लिए सरकार बलूचियों को भारत का एजेंट बताती है. इस दुष्प्रचार का असर पाकिस्तान की जनता पर भी दिखता है. यह पाकिस्तान की सामूहिक चेतना का हिस्सा बन चुका है, लेकिन बलूचिस्तान के लोगों की कहानी कुछ और ही है.

बलूचिस्तान के लोगों ने भारत के विभाजन का समर्थन नहीं किया था. यहां के लोग मानते हैं कि पाकिस्तान ने बंदूक की नोक पर बलूचिस्तान को छीन लिया और अपनी हुकूमत स्थापित कर ली. बलूचिस्तान के लोगों ने आज़ादी से पहले जिन्ना से ज़्यादा गांधी जी और जवाहरलाल नेहरू को अपना नेता माना. आज भी उनकी आज़ादी के गीतों में भगत सिंह का नाम होता है. विभाजन के बाद जब 1947 में भारत–पाकिस्तान में दंगे हो रहे थे, तब पाकिस्तान से हिंदू, सिख और ग़ैर–मुस्लिमों को भगाया जा रहा था. उस वक्त भी बलूचिस्तान अकेला ऐसा इलाक़ा था, जहां से किसी को भगाया नहीं गया, कोई क़त्लेआम नहीं हुआ. 1992 में जब हिंदू संगठनों ने भारत में बाबरी मस्जिद को गिरा कर देश को तोड़ने का काम किया, तो पाकिस्तान में इसकी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई. पाकिस्तान के पंजाब में अधिकारियों की मदद से हिंदू मंदिरों को तोड़ा गया. उस दौरान भी बलूचिस्तान शांत रहा. बलूचिस्तान में एक भी मंदिर पर हमला नहीं हुआ और न ही किसी हिंदू को क्षति पहुंची. ख़ैरबख़्श मारी, अताउल्लाह ख़ान मेंगल, अकबर ख़ान बुग्ती जैसे कई बलूच नेताओं ने इस दौरान हिंदुओं और मंदिरों को अपने संरक्षण में ले लिया. इन नेताओं ने हिंदुओं को न सिर्फ़ बचाया, बल्कि अपनी निगरानी में पूजा–पाठ भी कराया. बलूचियों और हिंदुओं की निकटता का गवाह है नवाब खान बुग्ती की हत्या. अगस्त 2006 में जब परवेज मुशर्रफ़ की सरकार ने एक सैनिक हमले में उनकी हत्या की, तो उनके साथ मरने वालों में कई हिंदू भी थे, जो उनके समर्थक थे.

बलूचिस्तान आंदोलन का इतिहास

बलूचिस्तान के निवासियों और पाकिस्तान की सरकार के बीच की यह तकरार नई नहीं है. 1947 से बलूचिस्तान में लोग आज़ादी की मांग कर रहे हैं. बलूच समुदाय शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठा रहा है. बलूचिस्तान की प्राकृतिक संपदाओं और औद्योगीकरण से उनका फायदा नहीं हुआ है. इसका फायदा बाहर के लोग उठा रहे हैं. पंजाब और सिंध के लोगों के हितों की रक्षा के लिए सरकार यहां सैनिकों का जमावड़ा करती है और वक्त–बेवक्त उनका इस्तेमाल बलूचिस्तान की असहाय जनता पर करती है. पाकिस्तानी सेना के दमन के बावजूद बलूचियों की लड़ाई जारी है. 1947 से बलूचिस्तान का इतिहास पाकिस्तानी सेना और सरकार के दमन की कहानी है. बलूचिस्तान और पाकिस्तान के बीच चल रही लड़ाई के मुख्य बिंदु इस तरह हैं–

पहली लड़ाई (1948)

1947 में भारत के विभाजन के समय बलूचिस्तान पाकिस्तान में नहीं था. अप्रैल 1948 में पाकिस्तान सरकार ने सेना भेजी, जिसने मीर अहमद यार ख़ान को अपने राज्य को पाकिस्तान के हवाले करने को मजबूर कर दिया. उनके भाई प्रिंस अब्दुल करीम ख़ान ने पाकिस्तान सरकार के खिलाफ संघर्ष करने का फैसला किया. वह अफ़ग़ानिस्तान में रहकर पाकिस्तान की सेना के साथ गुरिल्ला युद्ध करते रहे. 16 मई 1948 को अब्दुल करीम ने एलान कर दिया कि वह बलूचिस्तान की आज़ादी के लिए आंदोलन करेंगे. उन्होंने बलूचिस्तान के बड़े राजनीतिक दलों का एक गठजोड़ बनाया. प्रिंस अब्दुल करीम ख़ान का संबंध न सिर्फ़ वहां के शाही परिवार से था बल्कि वह मकरान राज्य के पूर्व गवर्नर भी थे.

> पाकिस्तान की सरकार को यह समझना चाहिए कि बंदूक के सहारे आतंकवादियों से तो लड़ा जा सकता है, लेकिन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए लड़ने वाली जनता का सामना टैंक से नहीं किया जा सकता. अब तक पाकिस्तान बलूचिस्तान की समस्या के पीछे विदेशी ताक़तों को जिम्मेदार बताता रहा है. यह पाकिस्तान की नासमझी है.

दूसरी लड़ाई (1958–59)

जब प्रधानमंत्री चौधरी मोहम्मद अली ने पाकिस्तान में एक यूनिट की पॉलिसी का एलान किया, तो बलूचिस्तान में हंगामा मच गया. इस पॉलिसी के तहत पाकिस्तान का मक़सद संघीय ढांचे को ख़त्म कर चारों राज्यों को एक साथ मिलाना था. नवाब नवरोज ख़ान ने इस पॉलिसी के ख़िलाफ़ हथियार उठा लिया. उन्हें और उनके समर्थकों को देशद्रोह का दोषी बता कर पाकिस्तान की सरकार ने गिरफ़्तार कर लिया. उन्हें हैदराबाद जेल में डाल दिया गया. जब वे जेल में थे, तभी उनके परिवार के पांच सदस्यों को फांसी दे दी गई. इसके बाद जेल के अंदर ही नवाब नवरोज खान की मौत हो गई.

तीसरी लड़ाई (1963–69)

नवाब नवरोज ख़ान की मौत के बाद पाकिस्तान की सरकार ने बलूचिस्तान में सैनिकों को तैनात करना शुरू कर दिया. इसके विरोध में शेर मोहम्मद बिजरानी मारी ने गुरिल्ला युद्ध शुरू किया. इन लोगों ने रेलवे लाइन पर बमबारी की और कई सैनिक ठिकानों को अपना निशाना बनाया. पाकिस्तानी सेना ने इसका भयानक जवाब दिया और मारी जनजाति के कई इलाक़ों को तबाह कर दिया. इस युद्ध का नतीजा यह रहा कि याह्या ख़ान ने 1969 में एक यूनिट की पॉलिसी को ख़त्म कर दिया और बलूचियों के साथ शांति स्थापित की. इस पॉलिसी के ख़त्म होते ही बलूचिस्तान को नई पहचान मिली. आज यह पाकिस्तान का सबसे बड़ा राज्य है.

चौथी लड़ाई (1973–77)

1972 में राजनीतिक दलों ने फिर से एकजुटता दिखाई और पाकिस्तान की जुल्फिकार अली भुट्टो की सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू किया. उन्होंने सरकार में बलूच समुदाय की हिस्सेदारी का सवाल उठाया. इसके जवाब में पाकिस्तान सरकार ने वहां की सरकार गिरा दी, जिसके बाद बलूचिस्तान में हिंसा भड़क उठी. इस लड़ाई में आठ हज़ार से ज़्यादा बलूचियों की मौत हुई.

पांचवीं लड़ाई (2004) से अब तक

2005 में बलूच लीडर नवाब अकबर ख़ान बुग्ती और मीर बलाच मारी ने पाकिस्तान सरकार के सामने 15 प्वाइंट का एजेंडा रखा. इसमें बलूचिस्तान की प्राकृतिक संपदा, बलूचों की सुरक्षा और इलाक़े में सैनिक अड्डा बनाने पर रोक जैसे मुद्दे थे. सरकार ने इसे नज़रअंदाज़ कर दिया. पाकिस्तान सरकार के शोषण के ख़िलाफ़ बलूचिस्तान में फिर से आंदोलन शुरू हो गया. पाकिस्तान सरकार ने राजनीतिक हल निकालने के बजाय बलप्रयोग किया. सैकड़ों राजनीतिक कार्यकर्ताओं, छात्रों, डॉक्टरों और नेताओं को बिना किसी जुर्म के गिरफ़्तार कर लिया गया. इनमें से कई आज तक वापस लौट कर नहीं आए हैं. कई लोगों को जेल में भयंकर यातना दी गई, जिससे उनकी मौत हो गई. अगस्त 2006 को पाकिस्तानी सेना से लड़ते हुए नवाब अकबर ख़ान बुग्ती की मौत हो गई. 3 अप्रैल 2009 में बलूच नेशनल मूवमेंट के अध्यक्ष गुलाम मोहम्मद बलूच और उनके साथी लाला मुनीर और शेर मोहम्मद को गिरफ़्तार कर लिया गया और पांच दिन बाद एक सुनसान जगह में उनकी लाशें मिलीं. उनकी लाशें गोलियों से छलनी थीं. बलूचिस्तान के लोग मानते हैं कि यह काम आईएसआई का है. अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों की कई रिपोर्ट में बलूचिस्तान में चल रहे दमन की कहानी मौजूद है.

आज जब दुनिया में इंटरनेट की वजह से संचार माध्यम में क्रांति हुई है, उसमें पाकिस्तान के झूठ को कोई मानने वाला नहीं है. पाकिस्तान की सेना आतंकवादियों को ख़त्म करने के नाम पर बलूचियों पर अत्याचार कर रही है. इंटरनेट पर ऐसी कई रिपोर्ट मौजूद हैं, जो पाकिस्तान की सेना की करतूत का पर्दाफाश करती हैं. हकीकत यह है कि बलूच आतंकवादी नहीं हैं. वहां की समस्या आतंकवाद नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक है. जवान या बूढ़े, शहरी या ग्रामीण, पढ़े–लिखे या अनपढ़–सेकुलरिज़्म बलूचियों के ख़ून में है. यह बात भी सोचने वाली है कि इतनी ग़रीबी और पिछड़ेपन के बावजूद बलूच किसी जिहादी आतंकवादी संगठन के सदस्य नहीं बनते और न ही किसी बलूची का नाम भारत में आतंक फैलाने वालों की लिस्ट में है. बलूच न तो अल–क़ायदा के समर्थक हैं और न ही तालिबान के. न ही आजतक कोई ऐसा उदाहरण है, जिसमें यूरोप या अमेरिका में पकड़े गए पाकिस्तानी आतंकवादियों में कोई बलूच हो और आज तक कोई बलूच आत्मघाती आतंकवादी नहीं बना. हां, कुछ ऐसे उदाहरण ज़रूर हैं, जैसे कि डेनियल पर्ल की किडनैपिंग और हत्या, जिसमें येमेनी बलूच भी शामिल थे. यह उदाहरण एक अपवाद की तरह है, लेकिन साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि बलूच जिहादी आतंकवाद के समर्थक नहीं हैं.

पाकिस्तान अगर बलूचिस्तान को भारत–पाकिस्तान के रिश्तों के बीच मोहरा बनाता है, तो आगे आने वाले दिनों में इसके भयानक परिणाम हो सकते हैं. यह बात भी तय है कि बलूचिस्तान में सेना और हथियारों के इस्तेमाल से शांति नहीं आने वाली है. पाकिस्तान को बलूचिस्तान में शांति के लिए सैनिकों को वापस बैरक में भेजना होगा. बलूचियों को राजनीतिक और प्रजातांत्रिक अधिकार देने होंगे और उनकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी बलूच समुदाय के हाथों में ही देने की ज़रूरत होगी. साथ ही बलूचिस्तान में पाकिस्तान और विदेशी मीडिया पर लगे प्रतिबंधों को ख़त्म करने की ज़रूरत है, ताकि यहां की हक़ीक़त दुनिया के सामने आ सके. अगर ऐसा नहीं होता है, तो यह बलूचिस्तान के साथ अन्याय होगा. पाकिस्तान की सरकार को यह समझना चाहिए कि बंदूक के सहारे आतंकवादियों से तो लड़ा जा सकता है, लेकिन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए लड़ने वाली जनता का सामना टैंक से नहीं किया जा सकता. अब तक पाकिस्तान बलूचिस्तान की समस्या के पीछे विदेशी ताक़तों को जिम्मेदार बताता रहा है. यह पाकिस्तान की नासमझी है, क्योंकि जैसे–जैसे दुनिया भर के देश बलूच आंदोलन को समर्थन देते जाएंगे, वैसे–वैसे पाकिस्तान की मुश्किलें बढ़ती जाएंगी. आतंकवाद के नाम पर बलूचियों के नरसंहार को रोकने में भारत की सरकार को अंतरराष्ट्रीय नियमों और क़ानूनों के तहत जो भी क़दम उठाए जा सकते हैं, उठाने चाहिए.■

feedback@chauthiduniya.com

होंडा मज़दूर आंदोलन

3000 मज़दूरों को नौकरी से निकाला, कइयों पर झूठे केस

विकास के इस मॉडल में श्रम और श्रमिकों की हैसियत क्या है

अलवर–राजस्थान

शशि शेखर

मेक इन इंडिया के दौर में अगर कोई कंपनी एक साथ तीन हजार मजदूरों को नौकरी से निकाल दे, मजदूरों पर झूठे मुकदमे दर्ज करवाए तो इसे क्या कहेंगे? राजस्थान के अलवर जिला में होंडा मोटरसाइकिल एंड स्कूटर प्रा. लि. कंपनी है. यह कंपनी यहां पर दो पहिया वाहन बनाती है. होंडा एक मल्टीनेशनल कंपनी है और भारत में इसके मोटरसाइकिल और स्कूटर की बिक्री रिकॉर्ड संख्या में होती है. 16 फरवरी 2016 को यहां एक मजदूर के साथ मारपीट हुई और उसे ओवर टाइम करने से रोका गया. मजदूरों को जब इस बात की जानकारी हुई तो मजदूर यूनियन ने कंपनी प्रबंधन से बात की. मजदूरों ने दोषी इंजीनियर पर कार्रवाई करने की मांग की. लेकिन मजदूरों की जायज शिकायत सुनने के कंपनी प्रबंधन ने अपने लोगों के जरिए मजदूरों से मारपीट की. मजदूरों का आरोप है कि कंपनी ने बाउंसर बुला कर उनके साथ मारपीट की. इसके बाद वहां पुलिस भी आ गई और पुलिस ने भी मजदूरों पर ही कार्रवाई की. इस सबमें बड़ी संख्या में मजदूर घायल हुए. इसके बाद मजदूरों पर 307, 395 जैसी धाराएं लगाई गईं और उन्हें जेल भेज दिया गया. कंपनी ने करीब 3000 ठेका मजदूरों और 200 स्थाई मजदूरों को नौकरी से निकाल दिया. मजदूरों का ये भी कहना है कि यहां के मजदूर अपने लिए एक यूनियन बनाने की कोशिश कर रहे थे और प्रबंधन नहीं चाहता था कि मजदूर यूनियन बनाएं, इसलिए भी ये सब ड्रामा किया गया.

होंडा के मजदूरों ने 6 अगस्त 2015 को यूनियन बनाने की प्रक्रिया शुरू की थी. कंपनी में 450 स्थाई और करीब 3000 अस्थाई मजदूर काम करते हैं. इस प्लांट से हर दिन 4500 बाईक व स्कूटर का उत्पादन होता है. यहां स्थाई मजदूरों का वेतन जहां 16000 रुपये है, वहीं अस्थाई मजदूर की 8000 रुपए. इसके अलावा छुट्टी लेने पर पैसे भी काट लिए जाते हैं. इस प्लांट में तीन पाली में काम होता है, जहां अक्सर मजदूरों को ओवर टाइम करना पड़ता है. अगर कोई मजदूर ओवर टाइम करने से मना कर दे, तो उसके साथ कंपनी के अधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार किया जाना आम बात है. इसे देखते हुए यहां के मजदूरों ने एक यूनियन बनाने का निर्णय लिया. कंपनी के एक मजदूर ने बताया कि कंपनी प्रबंधन ने यूनियन बनाने की बात सुनते ही हमारा उत्पीड़न शुरू कर दिया. इसी बीच होंडा कंपनी ने मजदूरों का यूनियन न बनने देने के लिए हर संभव कोशिश शुरू कर दी. इसी बीच कंपनी ने गुजरात में अपना एक नया प्लांट बनाना शुरू किया. इसके बाद, फरवरी 2016 में एक साथ तीन हजार से ज्यादा मजदूरों को काम से निकाल दिया गया.

कंपनी के इस निर्णय के खिलाफ मजदूर संगठित हुए और उन्होंने धरना-प्रदर्शन शुरू कर दिया. सात महीने बीत जाने के बाद भी मजदूरों को न्याय नहीं मिला और उनका इंसाफ के लिए संघर्ष आज भी जारी है. मजदूरों का संघर्ष अब राजस्थान के अलवर से शुरू होकर दिल्ली के जंतर-मंतर तक पहुंच चुका है. यहां ये मजदूर एक महीने से लगातार अनशन पर बैठे हैं. शुरुआती दौर में जब ये मजदूर राजस्थान में प्रदर्शन कर रहे थे, तब उन पर मैनेजमेंट की ओर से कई तरह के दबाव डाले जाते थे. पुलिस भी इन मजदूरों को प्रदर्शन करने से रोकती थी, लेकिन यहां आकर अब ये मजदूर सत्ता और मीडिया को अपने साथ हुए अन्याय की कहानी सुनाने की कोशिश कर रहे हैं. टपुकेड़ा होंडा के मजदूरों ने 28 सितंबर से 2 अक्टूबर तक धारुहेड़ा-मानेसर-गुड़गांव-दिल्ली के बीच न्याय संघर्ष रैली निकाली, जो 2 अक्टूबर को जंतर-मंतर पर एक विशाल जनसभा के रूप में समाप्त हुई. 2 अक्टूबर के बाद से ये लोग लगातार अनशन पर बैठे हैं, फिर भी इन मजदूरों के चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं है. ये मजदूर अपने संघर्ष को अंजाम तक पहुंचाने के लिए पूरी तरह से तैयार दिख रहे हैं.

2 अक्टूबर को जंतर मंतर पर इन मजदूरों की एक बड़ी जन सभा हुई, जिसमें होंडा मजदूर यूनियन ने 5 होंडा प्रोडक्ट के बहिष्कार का फैसला लिया था. होंडा के इन आंदोलनकारियों ने होंडा उत्पादों के सभी ग्राहकों से अपील की है कि होंडा, टपुकेड़ा, राजस्थान ने पिछले 7 महीनों में 3 हजार स्किल्ड वर्कर्स को हटा दिया था और अनस्किल्ड वर्कर्स भर्ती कर लिए थे, जिसके कारण होंडा के उत्पाद सही तरीके से नहीं बन रहे हैं, इसलिए ग्राहक इन उत्पादों का बहिष्कार करें. वैसे मजदूरों के इस दावे की सच्चाई क्या है, ये तो कंपनी ही बता सकती है या फिर खुद उपभोक्ता, लेकिन मजदूरों ने विरोध का हर संभव तरीका अपनाना शुरू कर दिया है. मजदूर यूनियन के नेता और होंडा प्लांट टपूकेड़ा से बर्खास्त किए गए मजदूर नेता नरेश मेहता बताते हैं कि होंडा से निकाले गए श्रमिकों की भूख हड़ताल को एक महीने हो गए हैं, परंतु होंडा मैनजमेंट की तरफ से कोई परिणाम आता न देख अब हमारे परिजनों व समर्थकों ने फैसला लिया है कि वे हमारे समर्थन में पूरे भारत में, हर जिले के डीसी ऑफिस के सामने एक दिन की भूख हड़ताल करेंगे. उन्होंने कहा कि अगर इससे भी बात नहीं बनी, तो इसे आमरण अनशन में तब्दील किया जाएगा. नरेश मेहता आम जनता से भी अपील करते हैं कि आम आदमी भी होंडा श्रमिकों के ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ हमारा सहयोग करें. ■

feedback@chauthiduniya.com

इरोम ने बनाई नई पार्टी, सीएम इबोबी को देंगी चुनौती

अफस्पा से सियासी जंग लड़ेगी 'प्रजा'

चंदन राय

आयरन लेडी इरोम शर्मिला ने पीपुल्स रीसर्जेन्स एंड जस्टिस एलायंस (प्रजा) नाम से एक नई राजनीतिक पार्टी की घोषणा कर दी है. इससे पहले इरोम ने सामाजिक आंदोलन से निकलकर सत्ता के शिखर को चुनौती देने वाले अपने सियासी गुरु अरविंद केजरीवाल से कुछ गुर भी सीखे थे. अरविंद से मुलाकात के बाद उन्होंने अगले साल के शुरू में होने वाले मणिपुर के विधानसभा चुनाव में उतरने का फैसला किया. एक कुशल राजनेता की तरह उन्होंने मुख्यमंत्री इबोबी को चुनौती देते हुए थोउबल सीट से लड़ने का फैसला किया, साथ ही अपने लिए एक सेफ सीट भी बचाकर रखना जरूरी समझा, यानी इरोम थोउबल और खुरई दो विधानसभा सीटों से चुनाव मैदान में उतरेंगी. थोउबल कांग्रेस नेता ओकरम इबोबी सिंह का विधानसभा क्षेत्र है. वे वर्ष 2002 से लगातार मणिपुर के मुख्यमंत्री हैं. इबोबी के इस अजेय गढ़ को चुनौती देना इरोम के लिए भी काफी मुश्किल भरा साबित होगा, इसलिए अगर यहां से हार मिलती है तो भी खुरई सीट से जीतकर वे विधानसभा में अफस्पा के खिलाफ माहौल बनाने का प्रयास करेंगी. माना जाता है कि अरविंद से मुलाकात के बाद इरोम ने अपने लिए एक सुरक्षित सीट रखने का फैसला लिया है.

नई पार्टी की घोषणा करते हुए उन्होंने बताया कि हम कर्म से, बातों से अपने राजनैतिक उद्देश्यों को पाने के लिए सिर्फ अहिंसक साधनों का इस्तेमाल करेंगे. इसके अलावा प्रजा लैंगिक असमानता के खिलाफ लड़ाई जारी रखेगी. उन्होंने आर्थिक लचीलेपन व लोगों की आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने की भी बात की यानी वे सभी बातें जिनसे जनता को लुभाया जा सके.

एक मंजे राजनीतिज्ञ की तरह उन्होंने मणिपुर की सभी 60 सीटों से लड़ने का फैसला नहीं लिया, बल्कि सिर्फ 20 सीटों पर कैंडीडेट उतारने का फैसला किया है. इरोम के करीबियों ने बताया कि पिछले लोकसभा चुनाव में आप पार्टी की असफलता से सबक लेते हुए अरविंद ने इरोम को सभी सीटों पर चुनाव नहीं लड़ने की सलाह दी थी. अपनी राजनीतिक शक्ति का आकलन करने के बाद ही सभी सियासी पत्ते खोले जाएं, ताकि विरोधियों को चारों खाने चित्त किया जा सके. इसके साथ ही इरोम राजनीति में बेहतर सलाह हासिल करने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से भी मिलने की इच्छा रखती हैं.

एक सामाजिक आंदोलन से निकली पार्टी ने हाल में राजनीति के माहिर खिलाड़ियों को परास्त कर मिसाल कायम की थी. इरोम इसी इतिहास को मणिपुर में दोहरना चाहती हैं, लेकिन वे अपनी कमजोरियों को भी बखूबी पहचानती हैं. उन्हें पता है कि अफस्पा के खिलाफ 16 साल भूख हड़ताल जारी रखने के बाद राजनीतिक सफर तय करने के उनके फैसले से मणिपुर के लोग खुश नहीं हैं. मणिपुर के अरविंद सलाम का कहना है कि इरोम के राजनीति में आने के फैसले से अफस्पा की लड़ाई कमजोर होगी. इरोम के हंगर स्ट्राइक के कारण राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मीडिया में अफस्पा का मुद्दा लंबे समय तक सुर्खियों में रहा. अब अगर इरोम राजनीति में आती हैं, तो वे सियासी पैंतरेबाजी तो जरूर सीख जाएंगी, लेकिन अफस्पा का मुद्दा गौण हो जाएगा. राजनीति के जानकारों का कहना है कि मणिपुर की जनता की भावनाओं को समझते हुए इरोम ने उनका ध्यान बंटाने के लिए सीधे इबोबी के खिलाफ उतरने का फैसला लिया है. ऐसा कर वे लोगों को बता सकेंगी कि इबोबी की क्या मजबूरी थी कि उन्होंने राज्य से अफस्पा हटाने के लिए कोई पहल नहीं की? अभी हाल में गृह राज्यमंत्री किरण रिजीजू ने भी आरोप लगाया था कि अफस्पा हटाने के लिए राज्य की तरफ से कोई प्रस्ताव नहीं आया है. इरोम ने सक्रिय राजनीति में उतरने के फैसले पर कहा, वे अफस्पा हटाने के लिए सीएम बनना चाहती हैं. इबोबी ने अपने निर्वाचन क्षेत्र में सभी लोगों को संतुष्ट कर रखा है. चाहे तो वे मुझे खारिज कर सकते हैं, लेकिन मैं यह जानना चाहती हूं कि क्या अन्य जिलों की जनता व पहाड़ी लोगों के हितों का भी उतना ही ख्याल रखा गया है? मैं अफस्पा खत्म कराने के लिए ही सीएम के खिलाफ चुनाव में उतरना चाहती हूं.

राजनीति में सोशल एक्टिविस्ट की पहचान कायम रखते हुए उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी न्याय, समझदारी, प्रेम और शांति के मूल सिद्धांतों का पालन करेगी. उन्होंने बताया कि नई पार्टी प्रजा अफस्पा के खात्मे के लिए काम करती रहेगी. साथ ही राज्य में सभी तरह की हिंसा और सैन्यीकरण के खिलाफ आवाज उठाएगी. नई पार्टी की घोषणा करते हुए उन्होंने बताया कि हम कर्म से, बातों से अपने राजनैतिक उद्देश्यों को पाने के लिए सिर्फ अहिंसक साधनों का इस्तेमाल करेंगे. इसके अलावा प्रजा लैंगिक असमानता के खिलाफ भी लड़ाई जारी रखेगी. उन्होंने आर्थिक लचीलेपन व लोगों की आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने की भी बात की यानी वे सभी बातें जिनसे जनता को लुभाया जा सके. लेकिन जमीनी हालात ये हैं कि रिहा होने के बाद इरोम को पूरे मणिपुर में रहने के लिए एक घर तक नहीं मिला. यहां तक कि मां ने भी, जिनका वादा था कि वो अपनी बेटी से राज्य में अफस्पा हटने के बाद ही मिलेंगी, आज तक मिलने नहीं आईं. इरोम को इस सवाल का जवाब ढूंढना होगा कि अफस्पा हटाने के मुद्दे पर जिस राज्य के सभी निवासी उनके साथ खड़े थे, वे अचानक उनसे दूर क्यों होते चले गए? क्या यह जरूरी नहीं था कि मणिपुर का नेतृत्व करने की इच्छा रखने से पूर्व उन्होंने जनता के नाराजगी की वजह तलाश ली होती? क्या सचमुच मणिपुर के निवासी इरोम के भूख-हड़ताल तोड़े जाने से नाराज हैं या राजनीति में उतरने के उनके फैसले से या फिर अफस्पा के खिलाफ एक सशक्त योद्धा के अवसान का दुख उन्हें साल रहा है. वजह जो भी रही हो, जनता की नाराजगी के कारण तलाशने होंगे, तभी इरोम के लिए राजनीति का सफर आसान होगा. ■

feedback@chauthiduniya.com

घोटालों की रमन सरकार

कैम्पा की करोड़ों की राशि का हुआ बंदरबांट

लोरीन शर्मा

छत्तीसगढ़ में कैम्पा के पैसों से बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार का पता चला है. सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद बने इस फंड से सर्वाधिक पैसे 471.24 करोड़ रुपए छत्तीसगढ़ को मिले, लेकिन धरातल पर इन पैसों से एक भी काम नहीं हुआ. 2009-10 से 2012-13 तक छत्तीसगढ़ को 123.21 करोड़, 134.11 करोड़, 99.54 करोड़ और 114.38 करोड़ रुपए दिए गए थे.

कैम्पा फंड से वनीकरण में महज कुछ लाख रुपए ही खर्च किए गए हैं, बाकी करोड़ों रुपए अधिकारियों ने मुख्यमंत्री की मर्जी से अन्य कार्यों में खर्च कर दिया. जंगल सफारी, वाहनों की खरीदी, डीएफओ रेंजर के बंगले और सैर सपाटे में ही वनीकरण के लिए आई रकम को खर्च किया गया है. कैग ने अपनी पिछली ऑडिट रिपोर्ट में इस पर कड़ी आपत्ति जताई थी, लेकिन इसका असर राज्य सरकार पर नहीं पड़ा. केंद्र सरकार ने इस मामले में सुप्रीम कोर्ट में याचिका लगने के बाद राज्य का फंड रोक दिया है. 2012-13 के बाद एमओईएफ ने राज्य सरकार को कोई राशि नहीं दी है. राज्य के मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह कैम्पा के रुके पैसों के लिए दिल्ली में प्रयास तो कर रहे हैं, लेकिन अब तक मिले पैसों का हिसाब नहीं दे पाए हैं. कैम्पा फंड के तहत अगले पांच सालों में छत्तीसगढ़ को 3000 करोड़ की राशि मिलनी थी. राज्य सरकार ने कैम्पा के पैसों से भ्रष्टाचार की शुरुआत स्टेयरिंग कमिटी बनाकर की थी. कमिटी ने सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों से परे जाकर दूसरे मद में कैम्पा के पैसों को खर्च किया. कैम्पा के पूर्व प्रभारी बोवाज व वर्तमान प्रभारी सिन्हा सहित कई आला अधिकारियों ने मिलकर अपनी मर्जी से पैसों की बंदरबांट की. कैग की रिपोर्ट ने इस भ्रष्टाचार की सारी परतें खोल कर रख दी. इसके बावजूद रमन सिंह कैम्पा के पैसों से छत्तीसगढ़ के जिलों में करोड़ों की सौगात देने की घोषणाएं करते रहे. वन-विभाग ने अपने मंत्रियों और अफसरों के लिए 2010-11 और 2011-12 में 23 बड़े वाहनों अम्बेसडर, टाटा मांजा, टोयटा कार और टाटा सफारी की खरीदी की. इस खरीदी में डेढ़ करोड़ खर्च किये गए. इसी तरह सैकड़ों बोलेरो वाहनों की खरीदी की गई. इस तरह की खरीदी की साफ़ मनाही होने के बावजूद मनमाने तरीके से कैम्पा के पैसों का दुरुपयोग किया गया. डीएफओ के बंगले, हॉस्टल के लिए भी करोड़ों रुपए फूंके गए, जिसकी कोई जरूरत नहीं थी. कैग ने अपनी रिपोर्ट में इस पर टिप्पणी की है. बड़े पैमाने पर हुए इस भ्रष्टाचार में राज्य सरकार और उनके अधिकारियों ने भारत सरकार की अनुमति के बिना वनीय जमीन का उपयोग, गैर वनीय कार्यों के लिए किया है. वन-विभाग का पथरोहण/नहर रोपण, नदी तटबंध ऑक्सीजन रोपण और शहरी वनीकरण योजना फाइलों में ही बंद पड़ा है.

नंदन वन जू के नया रायपुर में व्यवस्थापन को राज्य में जंगल सफारी के रूप में प्रचारित किया गया और कैम्पा के पैसों को इस मद में लगाया गया, जबकि सुप्रीमकोर्ट के दिशा-निर्देशों में इस पैसे से इको टूरिज्म आदि गतिविधियों की मनाही थी. नया रायपुर के जंगल सफारी में भी करोड़ों रुपए खर्च किए गए, जिसमें सर्वे, बाउंड्रीवाल जैसे खर्चे भी शामिल हैं. इंटरप्रीटशन सेंटर, चैन लिंक फेंसिंग, लामिनी पार्क में भी करोड़ों खर्च किये गए. 2012 में ही इको टूरिज्म में वन-विभाग ने लगभग 2 करोड़ रुपए खर्च किए. बारनवापारा के निवासियों के व्यवस्थापन में भी कैम्पा से मिले पैसों का उपयोग किया गया, जबकि केंद्र सरकार ने इस कार्य के लिए प्रति परिवार 10 लाख स्वीकृत किया था. ■

feedback@chauthiduniya.com

हरियर छत्तीसगढ़ योजना के नाम पर फ़र्ज़ीवाड़ा

छत्तीसगढ़ राज्य में हरियर छत्तीसगढ़ योजना के नाम पर करोड़ों रुपयों का फर्जीवाड़ा हुआ है. हरियर छत्तीसगढ़ योजना के तहत प्रदेश-भर में आठ करोड़ पौधे लगाये गए हैं. वन-विभाग द्वारा बारिश के शुरुआती मौसम में राजधानी में जगह-जगह पौधरोपण किए जाने के दावे किए गए. मगर हरियाली पखवाड़ा खत्म होते ही इस पूरे खेल का पता चला. पौधरोपण के बाद प्रशासन ने दावा किया कि राजधानी के विभिन्न इलाकों में तीन करोड़ की राशि खर्च कर 1.80 लाख पौधे लगाए गए हैं, लेकिन जिन स्थानों पर पौधे लगाने की बात विभाग ने कही, वहां सिर्फ गड्ढे खोदकर छोड़ दिया गया है, तो कहीं सिर्फ खाली मैदान ही है. वन-विभाग के अनुसार डब्लूआरएस खमताराई में 5500 पौधे लगाए गए हैं, लेकिन हकीकत यह है कि डब्लूआरएस में स्कूल परिसर व मैदान और मंदिर प्रांगण में एक भी पौधा नहीं लगाया गया है. रेलवे अस्पताल में 38, डब्लूआरएस की मुख्य सड़क से क्रॉस सड़क तक 216, केंद्रीय विद्यालय से सामुदायिक भवन तक सड़क पर 185 और परिसर की कुछ और सड़कों पर 100 पौधे लगाये गए हैं. डब्लूआरएस कॉलोनी में खाली जमीन पर एक भी पौधा नहीं लगा है. इस इलाके के निवासियों ने बताया कि वन-विभाग जिन स्थानों पर पौधरोपण का दावा कर रही है, वहां कोई पौधरोपण नहीं हुआ है. इसी तरह टिकरापारा के सिद्धार्थ चौक के नरैया तालाब के किनारे बड़े पैमाने पर पौधरोपण किए जाने का दावा किया गया है, लेकिन इसके उलट वहां तालाब के चारों ओर सिर्फ गड्ढे ही खोद कर छोड़ दिए गए हैं. वन-विभाग की नर्सरी में 100 से 125 रुपए में तैयार होने वाले पौधों को विभागीय अधिकारियों की मिलीभगत से 400 रुपए में खरीदा गया है. वन-विभाग ने हरियर छत्तीसगढ़ योजना के तहत प्रदेश भर में आठ करोड़ पौधे लगाने की बात कही, जिसमें से अधिकतर पौधे हैदराबाद से मंगाए गए हैं. राज्य में वन-विभाग के पास कई बड़ी नर्सरी है, जहां पर पौधे तैयार कराए जा सकते हैं. मगर राज्य शासन ने राज्य की नर्सरी का उपयोग नहीं कर बाहर से पौधों को मंगाया है. हैदराबाद से मंगाए गए इन पौधों को 400 रुपए में खरीदा गया है. इनमें फूलदार, फलदार सहित छायादार पौधे शामिल हैं. ■

वन-विभाग के आंकड़ों के अनुसार

नया रायपुर में	-1.43 लाख
डब्लूआरएस परिसर	- 5500
सेजबहार कॉलोनी	- 600
धरसिवा	- 2200

मुसलमानों की ओर ताकती कांग्रेस

चौथी दुनिया ब्यूरो

बिहार में कांग्रेस के पतन की किसी एक महत्वपूर्ण वजह पर जब चर्चा होती है, तो 1989 के भागलपुर दंगों का उल्लेख जरूर किया जाता है. लगातार दो महीने तक भागलपुर शहर और 250 गांवों में एक हजार से ज्यादा लोगों की जान ले लेने वाले इन दंगों ने बिहार से कांग्रेस युग के अंत की घोषणा कर दी थी. हालांकि डैमेज कंट्रोल के लिए कांग्रेस आलाकमान ने अपने तीन-तीन मुख्यमंत्रियों-सत्येंद्र नारायण सिंह, भागवत झा आजाद और जगन्नाथ मिश्र की कुर्सियों की बलि भी ली थी, लेकिन बिहार के जनमानस पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा. नतीजा यह हुआ कि 1990 के विधानसभा चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सत्ता से बाहर हो गई. तब से अब तक 26 वर्षों में कांग्रेस बिहार में कभी अकेले दम पर सत्ता हासिल करना तो दूर, सही तरह से कभी फल-फूल भी नहीं सकी. यह दीगर बात है कि समय-समय पर लालू प्रसाद ने अपनी सरकार बचाने, चलाने में उसकी मदद ली. पर हकीकत यह है कि इस दौरान विधानसभा में इसकी नुमाइंदगी न सिर्फ उंगलियों पर गिनने लायक रह गई, बल्कि सच्चाई यही है कि बिहार के सत्ता सिंहासन पर लगभग चालीस वर्षों से काबिज रही कांग्रेस हाशिये के गर्त में समा गई. 1990 से अब तक लगभग एक चौथाई सदी गुजर चुकी है. इस समय-काल में कांग्रेस की सत्ताई हैसियत को सुनिश्चित करने वाले न मुस्लिम उसके साथ रहे और न ही दलित. इन दोनों समुदायों की सम्मिलित आबादी बिहार में लगभग 31 प्रतिशत है. ये दोनों समुदाय कांग्रेसी सत्ता की मास्टर चाबी की हैसियत रखते थे, जो 1990 के चुनाव में उसके हाथ से निकल गए और जनता नामधारी पार्टियों के खाने में शिफ्ट हो गए. इन जनता नामधारी पार्टियों के सबसे महत्वपूर्ण नुमाइंदों में से एक लालू प्रसाद हैं, जिन्होंने इन समुदायों पर मजबूत पकड़ बना ली. लालू की यह पकड़ इतनी मजबूत बन गई कि यह मौजूदा सियासत की नजीर बन गई और इसका सबसे बड़ा खामियाजा कांग्रेस को ही भुगतना पड़ा. नतीजतन वह इन दशकों में कभी संभल नहीं पाई. हालांकि बाद में दलितों और मुसलमानों के एक हिस्से में बिखराव आया और वह रामविलास पासवान की पार्टी समेत अन्य दलों में भी शिफ्ट हुआ. पर 2010 तक कांग्रेस कमोबेश दलित-मुस्लिम वोटों से महरूम ही रही. हालांकि कांग्रेस हाईकमान ने इस दौरान अनेक प्रयोग किए. पिछड़ी कुर्मी जाति के सदानंद सिंह, भूमिहार जाति के अनिल कुमार शर्मा व रामजतन सिन्हा और मुस्लिम समुदाय से महबूब अली कैसर को अध्यक्ष बनाया जाता रहा, पर उनकी लाख कोशिशों के बावजूद कांग्रेस हाशिये से ऊपर नहीं उठ सकी. बल्कि यूं कहें कि इन वर्षों में कांग्रेस लालू प्रसाद के हाथों की कठपुतली सी बनी रही और लालू के इशारों पर सत्ता बचाने-बनाने के लिए महज एक फिलर की भूमिका निभाते हुए अपने वजूद के लिए कसमसाती रही. इस दौरान 25 वर्ष गुजर गए और फिर आया 2015 का विधानसभा का चुनाव, जो कांग्रेस के लिए जीवनदान बनकर आया. 2014 के लोकसभा चुनाव परिणामों में मोदी नामक सुनामी से तबाह हो चुके राष्ट्रीय जनता दल और जनता दल यू अपनी डूबती कश्ती को बचाने के लिए एक प्लेटफॉर्म पर आये और इसी दौरान इन दोनों दलों ने कांग्रेस को भी साथ ले लिया. 2015 के चुनाव में तीनों दलों ने मिलकर जो चुनाव लड़ा, उसका करिश्माई नतीजा सामने है. लेकिन इस बात की बहुत चर्चा नहीं हुई कि इस चुनाव में राजद, जद यू से भी ज्यादा व्यापक सफलता जिस पार्टी को मिली, वह कांग्रेस ही थी. कांग्रेस की सफलता दर, राजद और जदयू के मुकाबले ज्यादा थी और उसके पचपन प्रतिशत के करीब उम्मीदवार सफल हुए. कांग्रेस की इस सफलता ने जहां पार्टी में नया जोश और नई ऊर्जा भर दिया, वहीं इस चुनाव परिणाम में सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि उसके किसी एक समुदाय से सबसे अधिक जीत कर विधायक बनने वालों में मुसलमानों की संख्या सबसे ज्यादा थी. कांग्रेस 41 सीटों पर चुनाव लड़ी और इसमें मुस्लिम विधायकों की संख्या 6 रही. यानी इस पार्टी के मौजूदा कुल 27 विधायकों में मुसलमानों की भागीदारी 27 प्रतिशत के करीब है. इस तरह देखें, तो 16.9 प्रतिशत मुस्लिम आबादी वाले बिहार में कांग्रेस विधायकों की नुमाइंदगी 27 प्रतिशत होना चौंकाने वाला है. यह सफलता, दरअसल कांग्रेस खेमे में मुस्लिम वोटों की पुनर्वापसी की कहानी बयान करती है. यहां ध्यान देने की बात है कि मुस्लिम वोटों पर सबसे मजबूत दावेदारी करने वाले राजद के 80 में से 12 मुस्लिम विधायक हैं जबकि जद यू के 71 में से मात्र 5. दूसरे शब्दों में राजद के 16 प्रतिशत और जद यू के 14 प्रतिशत विधायक ही मुस्लिम हैं.

ऊपर की पंक्तियों में हमने पिछले दस वर्षों के कांग्रेस के बिहार प्रदेश अध्यक्षों की जाति या समुदायवार चर्चा करते हुए देखा कि किसी भी अध्यक्ष के कार्यकाल में कांग्रेस में उत्साह नहीं लौट पाया. लेकिन 2015 के चुनाव की परिस्थितियां ऐसी बनीं कि कांग्रेस की जीत से उसमें उत्साह आया. हो सकता है कि इस उत्साह का कारण, दलित समाज से संबंध रखने वाले मौजूदा अध्यक्ष अशोक चौधरी की खुशकिस्मती हो या उनके सफल नेतृत्व का प्रभाव, लेकिन सच्चाई यही है कि अब बिहार कांग्रेस संगठनात्मक तौर पर जोश में है. और यह जोश उसमें इसलिए भी आया है कि 2010 में 4 विधायकों वाली पार्टी अब 27 विधायकों की पार्टी बन चुकी है. आंकड़ों से हमने यह भी देखा कि इस सफलता में मुसलमानों की अहम भागीदारी रही है. अब अगर कांग्रेस रणनीतिकारों को यह एहसास है कि उनकी स्वीकार्यता मुसलमानों में बहुत बढ़ी है, ऐसे में वह इसे बरकरार रखने या चूं कहें कि और मजबूत करने की दिशा में काम करती है, तो यह कोई अस्वाभाविक नहीं है. यही कारण है कि पार्टी ने पिछले 21 अक्टूबर को पटना में दलित-मुस्लिम महासम्मेलन का सफल आयोजन कर यह साबित करने की कोशिश की कि वह अपने संगठनात्मक वजूद को मुसलमानों के साथ-साथ दलितों में भी विस्तार देने में लगी है. यह आयोजन इसलिए भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है कि पिछले एक दशक में, कांग्रेस ने अपने संगठनात्मक विस्तार के लिए कई जतन किए, पर उन प्रयासों या आयोजनों में ऐसा उमंग या उत्साह कभी नहीं दिखा.

अब सवाल यह है कि कांग्रेस के संगठनात्मक विस्तार में आगे की चुनौतियां क्या हैं? ये चुनौतियां इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कांग्रेस अपने विस्तार के लिए जिस दिशा में बढ़ रही है, वह विरोधी भाजपा को कोई खास नुकसान पहुंचाने वाला नहीं है. जबकि उसके इस प्रयास का नुकसान खुद कांग्रेस के घटक दलों- राजद और जद यू को होगा. लिहाजा कांग्रेस के रणनीतिकार जब इन चुनौतियों पर गौर करते होंगे तो उनके सामने रुकावट के रूप में जो चेहरे नजर आते होंगे, वे लालू प्रसाद और नीतीश कुमार के चेहरे होंगे. क्योंकि कुछ हद तक दलित और बड़े पैमाने पर मुस्लिम वोटों पर इन दलों की ही पकड़ है. ऐसे में मौजूं सवाल यह है कि क्या राजद और जद यू कांग्रेस के ऐसे विस्तार को पचा पाएंगे? हमने यह सवाल बिहार प्रदेश कांग्रेस के प्रवक्ता अरशद अब्बास आजाद के सामने रखा. इसके जवाब में अरशद कहते हैं कि संगठन का विस्तार एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है. हर दल को आजादी है कि वह अपने संगठन को मजबूत करे. कांग्रेस भी इसी प्रयास में लगी है. संगठन के स्तर पर हम यही काम कर रहे हैं, बिना इस बात पर ध्यान दिए कि हमारे प्रयास से किसको क्या हानि होगी? हां यह बात सच है कि 1990 के बाद से दलितों और अल्पसंख्यकों में हमारा जनाधार कम हुआ है और ये दोनों समूह राजद जैसी पार्टियों की तरफ गए हैं. लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि हम तीनों पार्टियां महागठबंधन का हिस्सा हैं, जिन्होंने मिलकर चुनाव लड़ा है. चूंकि चुनाव में सीटों की साझेदारी होती है, इसलिए राजद या जद यू को हमारे प्रयास से चिंतित होने की जरूरत नहीं है.

सैद्धांतिक रूप से अरशद की बातें तो सही लगती हैं पर राजनीति की पेचीदगियां इतनी आसान नहीं और ना ही राजनीति किसी तयशुदा फॉर्मूले से चलती है. उधर राजद और जद यू जैसे कांग्रेस के घटक दल खुद अपने संगठनात्मक विस्तार में लगे हैं. और गौर से देखें तो तीनों दलों का पॉलिटिकल बेस कमोबेश एक ही है. हां यह जरूर है कि कांग्रेस की पकड़, राजद व जद यू के बनिस्बत उच्च वर्ग में ज्यादा है. 2015 के चुनावी टिकट बंटवारे में यह साफ हो भी गया था. राजद और जद यू ने कुछ अपवादों को छोड़ कर, उच्च वर्ग के कैंडिडेट्स खुद खड़े करने के बजाय, ये काम कांग्रेस के खाते में डाल दिया था. कांग्रेस ने भी इस फॉर्मूले को स्वीकार किया और उसे सफलता भी हाथ लगी. पर अब जबकि कांग्रेस के दोनों घटक दल अपने-अपने विस्तार के प्रयासों में लगे हैं, तो कांग्रेस का मुसलमानों और दलितों की तरफ रुख करना, लाजिमी तौर पर राजद व जद यू को नहीं सुहाएगा. इसलिए भले ही ये दोनों दल कुछ कहें नहीं, पर कांग्रेस के इस प्रयास पर चौकन्ने भी होंगे और रोड़े अटकाने की जरूरत हुई तो इससे भी बाज नहीं आएंगे. ■

feedback@chauthiduniya.com

केरल की रक्तरंजित राजनीति

केरल में आरएसएस-भाजपा और मुस्लिम लीग के दरम्यान उतनी बड़ी सियासी रंजिश नहीं है, क्योंकि इन संगठनों को एक-दूसरे से वोट बैंक में सेंध लगने का ख़तरा नहीं है. इसके बरअक्स सीपीएम और आरएसएस-भाजपा के बीच सियासी रंजिश अधिक इसलिए है, क्योंकि केरल में बतौर पार्टी भाजपा लगातार मज़बूत हो रही है.

सीपीएम के कार्यकर्ता सीवी धनराज की हत्या के विरोध में कन्नूर जिले में हजारों पोस्टर लगे हैं, लेकिन सीपीएम की ओर से कोई मुआवजा नहीं मिला

सीपीएम नेता सुधीर कुमार की पत्नी रमणी. सुधीर की हत्या आरएसएस के लोगों ने कर दी थी

आईयूएमएल के महासचिव एडवोकेट अब्दुल क़रीम

वरिष्ठ भाजपा नेता के. रंजीत

अभिषेक रंजन सिंह

भारत में सियासी रंजिशों को लेकर हत्याएं होना, वैसे तो कोई नई बात नहीं है, लेकिन देश के सर्वाधिक शिक्षित राज्य केरल के कन्नूर ज़िले में सियासी क़त्लेआम चिंता की बात है. इन्हीं वजहों से इस ज़िले को मौत की राजधानी भी कहा जाने लगा है. लेकिन कन्नूर में क़ायम इस ख़ूनी राजनीति के लिए किसी एक पार्टी को दोषी क़रार देना भी उचित नहीं है. कन्नूर में तमाम सियासी दलों के पास अपने कार्यकर्ताओं की हत्या से संबंधित लंबी फ़ेहरिस्त है, जो सीधे तौर पर सीपीएम को कसूरवार मानते हैं. अगर देखा जाए तो, यहां होने वाली ज़्यादातर हत्याएं सीपीएम और आरएसएस-भाजपा कार्यकर्ताओं की हुई हैं. सीपीएम और इंडियन यूनाइटेड मुस्लिम लीग भी एक दूसरे के प्रति हमलावर हैं. कई जगहों पर कांग्रेस और सीपीएम के बीच भी हिंसक झड़पें होती हैं. हालांकि, केरल में आरएसएस-भाजपा और मुस्लिम लीग के दरम्यान उतनी बड़ी सियासी रंजिश नहीं है, क्योंकि इन संगठनों को एक-दूसरे से वोट बैंक में सेंध लगने का ख़तरा नहीं है. इसके बरअक्स सीपीएम और आरएसएस-भाजपा के बीच सियासी रंजिश अधिक इसलिए है, क्योंकि केरल में बतौर पार्टी भाजपा लगातार मज़बूत हो रही है. भाजपा के इस उभार के पीछे उसके मातृ संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ज़मीनी कार्यों का योगदान है. केरल की मौजूदा सियासत में भाजपा को उन लोगों का समर्थन हासिल है, जो कभी सीपीएम के काडर हुआ करते थे. असल में यहां की पूरी लड़ाई वोट बैंक पर क़ब्ज़ा जमाने को लेकर है.

इसमें कोई शक नहीं कि कन्नूर में होने वाली ज़्यादातर हत्याएं सीपीएम और आरएसएस-भाजपा के कार्यकर्ताओं के बीच होती हैं, लेकिन कई दशक पहले कांग्रेस भी वही करती थी, जो आज सीपीएम कर रही है. केरल समाजवादी जनपरिषद के अध्यक्ष विनोद पायड़ा बताते हैं, पचास और साठ के दशक में कन्नूर समेत पूरे मालाबार इलाक़े में सोशलिस्ट पार्टी का अच्छा-ख़ासा असर था. यहां कांग्रेसी कार्यकर्ता सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं पर ऐसे टूटते थे, मानो संसदीय राजनीति में उनकी कोई अहमियत ही नहीं है. कन्नूर में जारी सियासी क़त्लेआम के लिए वैसे तो सभी दल ज़िम्मेदार हैं, लेकिन वर्षों पहले इस ख़ूनी राजनीति की शुरुआत कांग्रेस ने की थी. केरल प्रदेश भाजपा के वरिष्ठ नेता के. रंजीत ने चौथी दुनिया से ख़ास बातचीत में बताया कि सीपीएम की सरकार बनने के बाद भाजपा-आरएसएस के कार्यकर्ताओं पर हमले काफी बढ़ गए हैं. मौजूदा मुख्यमंत्री पिनाराई खुद आरएसएस कार्यकर्ता वडिकल रामकृष्णन की हत्या में आरोपी हैं. 28 अप्रैल 1969 में हुई यह हत्या केरल में भाजपा-आरएसएस कार्यकर्ता की पहली हत्या थी. रंजीत के मुताबिक़, केरल में अब तक 172 भाजपा-आरएसएस कार्यकर्ताओं की हत्या हो चुकी है. सिर्फ कन्नूर ज़िले में पार्टी से जुड़े 80 लोगों को सीपीएम ने मौत के घाट उतार दिया.

कन्नूर में जारी सियासी क़त्लेआम को इंडियन यूनाइटेड मुस्लिम लीग (आईयूएमएल) बेहद दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए इसके लिए सीपीएम को कसूरवार मानती है. पार्टी महासचिव एडवोकेट अब्दुल क़रीम ने इस संवाददाता को बताया कि पिछले दो दशकों में उनके कई कार्यकर्ताओं की हत्या सीपीएम के कारकुनों ने की है. उनके मुताबिक़, केरल में सीपीएम की सरकार बनने के बाद कन्नूर में अलग-अलग पार्टियों के छह लोगों की हत्याएं हुईं, जबकि साढ़े तीन सौ लोगों पर जानलेवा हमले हुए हैं. हाल में इंडियन यूनाइटेड मुस्लिम लीग के तीन युवा कार्यकर्ताओं अनवर, शक़ूर और केवीएम मुनीर की हत्या सीपीएम के लोगों ने कर दी. सत्तर के दशक में कालीकट में भीषण सांप्रदायिक दंगे हुए, जिसमें सैकड़ों बेगुनाह लोगों की जानें गईं. इस फ़साद की जड़ में कोई और नहीं, बल्कि सीपीएम थी. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ख़ुद को धर्मनिरपेक्ष क़रार देती है, लेकिन कालीकट दंगे का जब भी ज़िक्र आता है, तब उनके नेता खामोश हो जाते हैं. दरअसल, केरल में मुस्लिम लीग के कार्यकर्ताओं पर सीपीएम समर्थक इसलिए हमला करते हैं, क्योंकि सूबे में मुसलमानों का एकमुश्त वोट मुस्लिम लीग को जाता है. सीपीएम इसमें सेंध लगाना चाहती है, लेकिन उसके सारे प्रयास अबतक विफल साबित हुए हैं. हालिया संपन्न हुए विधानसभा चुनाव में इंडियन यूनाइटेड मुस्लिम लीग कुल चौबीस सीटों पर चुनाव लड़ी थी, जिसमें पार्टी ने अठारह सीटों पर जीत हासिल की. अगर पार्टी अकेले चुनाव लड़ती या ज़्यादा सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े करती, तो उनके विधायकों की संख्या इससे अधिक हो सकती थी, ऐसा पार्टी के कई बड़े नेताओं का मानना है.

कन्नूर ज़िला कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष के. सुरेंद्रन भी राजनीतिक हत्याओं के लिए सीपीएम को जिम्मेदार मानते हैं. उनके अनुसार, वामपंथ का सिद्धांत ही हिंसा पर आधारित है. कहने को वामपंथी पार्टियां चुनाव लड़ती हैं, लेकिन लोकतंत्र पर उनका कोई भरोसा नहीं है. अपने राजनीतिक विरोधियों को वामदल शत्रु समझते हैं. गौरतलब है कि वर्ष 1973 से लेकर 2016 तक कुल 43 कांग्रेस कार्यकर्ताओं की हत्याएं हुईं, जबकि ढाई सौ लोगों पर कातिलाना हमले हुए, जिसमें कई लोग अपंग हो गए हैं. कन्नूर में जारी राजनीतिक हत्याएं और सीपीएम पर उठ रहे सवाल पर यह संवाददाता स्थानीय सीपीएम दफ्तर पहुंचा, लेकिन वहां मौजूद नेताओं ने इस मुद्दे पर बात करने से मना कर दिया. दफ्तर से बाहर निकलते समय एक कार्यकर्ता ने सीपीएम के मुखपत्र देशाभिमानी के कार्यालय जाने की सलाह दी. बतौर लाइब्रेरियन वहां कार्यरत अर्जिद्रन के मुताबिक़, भाजपा और आरएसएस का यह आरोप ग़लत है कि उनके कार्यकर्ताओं की हत्या में सीपीएम से जुड़े लोग शामिल हैं. उनके मुताबिक़, 1994 से लेकर 2016 के बीच 53 सीपीएम कार्यकर्ताओं की हत्या आरएसएस और भाजपा समर्थकों ने कर दी. कन्नूर में किसी भी राजनीतिक दलों से जुड़े लोगों की हत्या होने पर विपक्षी पार्टियां बग़ैर किसी ठोस सबूत के सीपीएम पर आरोप मढ़ देते हैं.

कन्नूर में जारी राजनीतिक हत्याओं के बारे में सियासी दलों का कहना है कि स्थानीय पुलिस ऐसी घटनाओं को रोकने में नाक़ाम साबित हुई है. भाजपा और कांग्रेस का यहां तक कहना है कि पुलिस सरकार के दबाव में काम करती है, इसलिए दोषियों के ऊपर उचित कार्रवाई नहीं होती. हालांकि, कन्नूर के पुलिस अधीक्षक कोरी संजय कुमार गुरुदीन इन आरोपों को खारिज करते हुए बताते हैं, स्थानीय पुलिस बग़ैर किसी पक्षपात के राजनीतिक हत्या में शामिल लोगों पर क़ानून के प्रावधानों के तहत कार्रवाई करती है. उनके अनुसार, कन्नूर में होने वाली सभी हत्याएं राजनीतिक नहीं हैं, लेकिन सियासी फ़ायदे के लिए इन हत्याओं को राजनीतिक रंग दे दिया जाता है. कन्नूर पुलिस अधीक्षक ने वर्षवार हुई हत्याओं के संबंध में एक आंकड़ा पेश किया, लेकिन राजनीतिक दलों को इस आंकड़े पर भरोसा नहीं है. भाजपा और कांग्रेस नेताओं का आरोप है कि स्थानीय पुलिस सीपीएम सरकार के दबाव में राजनीतिक हत्याओं से जुड़े आंकड़ों को कम कर के बता रही है. कन्नूर पुलिस अधीक्षक कार्यालय से मिली जानकारी के मुताबिक़, वर्ष 1991 से 2016 के बीच कन्नूर में कुल 104 राजनीतिक हत्याएं हुईं. मरने वालों में सबसे ज़्यादा 42 व्यक्ति सीपीएम से जुड़े कार्यकर्ता थे, जबकि भाजपा से जुड़े कार्यकर्ताओं की संख्या 41, कांग्रेस के 15 एवं इंडियन यूनाइटेड मुस्लिम लीग से जुड़े चार और अन्य पार्टियों से संबंधित दो लोग शामिल हैं. पुलिस अधीक्षक के मुताबिक़, 1 मई 2016 से 16 सितंबर के बीच ज़िले में राजनीतिक हिंसा की कुल 301 वारदातें घटित हुईं. पुलिस में रिपोर्ट दर्ज़ होने के बाद सर्वाधिक 485 सीपीएम से जुड़े नेताओं एवं कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया, जबकि भाजपा और आरएसएस से जुड़े 190, कांग्रेस के 42 एवं अन्य दलों से संबंधित 113 लोगों को गिरफ्तार किया गया. ■

हर आंगन में मातम

आरएसएस की इकाई भारतीय मजदूर संघ के नेता सीके रामचंद्रन की विधवा पत्नी

सीपीएम कार्यकर्ता सीवी धनराज की पत्नी सजनी अपने दो छोटे बच्चों के साथ

कन्नूर ज़िले का तलेश्शरी और पय्यन्नूर तालुका राजनीतिक हत्या का केंद्र बन चुका है. बीते कुछ दशकों में यहां विभिन्न राजनीतिक दलों से संबंधित सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया. केरल में सीपीएम की सरकार बनने के बाद यहां सियासी रंजिशें अपेक्षाकृत बढ़ गई हैं. गांव अन्नूर में बीते 11 जुलाई 2016 को भारतीय मज़दूर संघ (बीएमएस) से जुड़े ऑटो ड्राइवर सीके रामचंद्रन की हत्या रात क़रीब साढ़े ग्यारह बजे सीपीएम के आधा दर्जन हथियारबंद लोगों ने घर में घुसकर कर दी. एक साधारण परिवार से संबंध रखने वाले रामचंद्रन की विधवा पत्नी और दो छोटे बच्चे हैं. इस घटना के बाद आरएसएस ने रामचंद्रन के पीड़ित परिवार को बीस लाख रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की, लेकिन घर में एकमात्र कमाने वाले सदस्य की ग़ैर-मौजूदगी इस परिवार को बराबर सालती रहेगी.

अन्नूर गांव से क़रीब पंद्रह किलोमीटर दूर रामंदली गांव में उसी दिन सीपीएम कार्यकर्ता सीवी धनराज की हत्या आरएसएस से जुड़े कार्यकर्ताओं ने कर दी. सेंट्रिंग मज़दूर धनराज के दो बेटे हैं, जिनकी उम्र क्रमशः दस साल और ढाई वर्ष है. सीपीएम की ओर से धनराज के पोस्टर तो पूरे कन्नूर ज़िले में चस्पां कर दिए गए हैं, लेकिन इस पीड़ित परिवार को पार्टी की ओर से कोई मुआवज़ा नहीं मिला है. धनराज की पत्नी सजनी के मुताबिक़, सीपीएम से जुड़े नेता घर आकर सांत्वना तो दे रहे हैं, लेकिन किसी ने भी आर्थिक मदद का भरोसा नहीं दिया है. ■

कन्नूर में जारी सियासी क़त्लेआम शर्मनाक

देश की शिक्षा एवं तरक्की का ज़िक्र होने पर केरल का नाम आना लाज़िमी है, लेकिन इसके बरअक्स यहां की राजनीति में सियासी पार्टियों के दरम्यान आपसी रंजिश और उसके नतीज़े में होने वाली क़त्ल-ओ-गारत की घटनाओं से बुद्धिजीवी और शिक्षाविद् भी बेहद दुखी हैं. मालाबार इलाके में जारी राजनीतिक हिंसा के अंतहीन सिलसिले पर अभिषेक रंजन सिंह के सवालों का जवाब दे रहे हैं कन्नूर विश्वविद्यालय के कुलपति एम.के अब्दुल क़ादर.

केरल देश का सर्वाधिक शिक्षित राज्य है, इसके बावजूद कन्नूर और कोझिकोड इलाक़ों में राजनीतिक हत्याएं पिछले कई दशकों से जारी हैं. आख़िर इस हिंसा की मुख्य वजह क्या है?

उत्तरी केरल के जारी सियासी फ़सादात की मौजूदा सूरत-ए-हाल से पहले मैं आपको मालाबार क्षेत्र के इतिहास के बारे में थोड़ा बताना चाहूंगा. कई सौ साल पहले कोझिकोड यानी कालीकट में नायर शासकों का साम्राज्य हुआ करता था. यहां के राजा सामुथ्री वंश से संबंध रखते थे. राज्यसत्ता हासिल करने के लिए इस राजवंश का संघर्ष चेरा नामक एक लड़ाकू जाति से होता था. इन लोगों के बीच युद्ध के अपने कुछ ख़ास नियम और अनुशासन थे. ये लोग साल में एक बार लड़ाई लड़ते थे. उस युद्ध को मामंगम कहा जाता था, जो आज भी कन्नूर समेत पूरे मालाबार इलाक़े में एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है. मामंगम युद्ध में हमेशा सामुथ्री राजवंश की विजय होती थी, लेकिन पराजय के बावजूद भी चेरा समुदाय ने कभी हार नहीं मानी. इतिहासकारों के मुताबिक़, भारत की आज़ादी के बाद तक यानी ज़मींदारी उन्मूलन से पहले मालाबार इलाक़े में आपसी वर्चस्व के लिए इन दोनों कौमों के बीच युद्ध होते रहे हैं. मैं इस बात से इत्तेफ़ाक़ नहीं रखता कि कन्नूर समेत पूरे मालाबार क्षेत्र के लोगों में हिंसक प्रवृत्ति की भावना प्रबल है, लेकिन कुछ हद तक इसमें सच्चाई ज़रूर है कि यह क्षेत्र सैकड़ों सालों से अशांत और लड़ाइयों की ज़द में रहा है.

कांग्रेस, मुस्लिम लीग, भाजपा और आरएसएस कन्नूर में जारी सियासी हिंसा के लिए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों को ज़िम्मेदार मानती है, इस आरोप में कितनी सच्चाई है?

यह बात सही है कि कन्नूर में होने वाले ज़्यादातर राजनीतिक हत्याओं में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता एवं कार्यकर्ता शामिल रहे हैं, लेकिन इस मामले में आरएसएस, भाजपा और कांग्रेस के कार्यकर्ता भी कम दोषी नहीं हैं. जिन इलाक़ों में सीपीएम का वर्चस्व है, वहां उनके कार्यकर्ता हिंसक घटनाओं को अंजाम देते हैं. उसी तरह जिन क्षेत्रों में भाजपा और आरएसएस का दख़ल है, वहां उनके समर्थक सीपीएम से जुड़े लोगों पर हमला करते हैं. यह सिलसिला आज से नहीं, बल्कि कई दशकों से जारी है. पहले मुख्य रूप से कांग्रेस बनाम सीपीएम के बीच झड़पें होती थीं, लेकिन अब यह लड़ाई आरएसएस और सीपीएम के बीच केंद्रित हो गई है.

कन्नूर को मौत का मरकज़ भी कहा जाने लगा है, आख़िर इस नकारात्मक छवि से उबरने का कोई रास्ता है या नहीं?

कन्नूर में जारी सियासी क़त्लेआम की घटनाओं से पूरा केरल शर्मसार है. देश में इसे लेकर इस सूबे की एक ग़लत छवि सामने आ रही है. मेरे ख़्याल से ज़म्हूरियत में हिंसा की कोई जगह नहीं होनी चाहिए. इसका इल्म हर उन पार्टियों को होना चाहिए, जो केरल की राजनीति में सक्रिय हैं. सभी राजनीतिक दलों की अपनी विचारधाराएं होती हैं, हर व्यक्ति चाहे वह किसी भी दल से जुड़ा हो, उसके लिए अपनी पार्टी की विचारधारा महत्वपूर्ण होती है, लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि हम उस विचारधारा या उस पार्टी के नेताओं से नफ़रत करें, जिनसे हमारा वैचारिक सामंजस्य नहीं है. अफ़सोस की बात है कि आज केरल में यही हो रहा है. यहां सीपीएम से जुड़े लोग आरएसएस एवं भाजपा से घृणा करते हैं, जबकि मुस्लिम लीग के नेता सीपीएम और भाजपा नेताओं से नफ़रत करते हैं. कन्नूर में होने वाली राजनीतिक हत्याओं को रोका जा सकता है, लेकिन इसके लिए सभी सियासी दलों को आपसी मतभेद भुलाकर दृढ़ इच्छाशक्ति का परिचय देना होगा, क्योंकि अगर आने वाले दिनों में मौत का यह सिलसिला नहीं थमा तो इसकी क़ीमत सभी राजनीतिक दलों को चुकानी पड़ेगी. वह इसलिए कि आज हर दलों के साधारण कार्यकर्ताओं की हत्या हो रही है, लेकिन कल इन्हीं दलों के बड़े नेताओं को सरेआम बेरहमी से क़त्ल किया जा सकता है. ■

पिछले दो दशकों में उनके कई कार्यकर्ताओं की हत्या सीपीएम के कारकुनों ने की है. उनके मुताबिक़, केरल में सीपीएम की सरकार बनने के बाद कन्नूर में अलग-अलग पार्टियों के छह लोगों की हत्याएं हुईं, जबकि साढ़े तीन सौ लोगों पर जानलेवा हमले हुए हैं. हाल में इंडियन यूनाइटेड मुस्लिम लीग के तीन युवा कार्यकर्ताओं अनवर, शक़ूर और केवीएम मुनीर की हत्या सीपीएम के लोगों ने कर दी.

feedback@chauthiduniya.com

www.kamalmorarka.com

कमल मोरारका

ऐसे ही लोकतंत्र का दम घोंटा जाता है

यहां मैं यह कह सकता हूं कि न्यायपालिका द्वारा किया जाने वाला हर काम समझदारी भरा नहीं होता. मैं यहां ज़रा कम गंभीर विषय पर आ रहा हूं. बीसीसीआई पर गठित किया गया लोढ़ा पैनेल एक मजाक है. यह कहने में बहुत अच्छा लगता है कि एक राज्य के पास केवल एक वोट होना चाहिए. जैसे आज गुजरात के पास तीन वोट (एसोसिएशन्स) हैं. चूंकि बीसीसीआई की स्थापना 1930 में आज़ादी से पहले हुई थी, तब महाराजा क्रिकेट को वित्त मुहैया करा रहे थे और उनके अपने एसोसिएशन्स थे, जो आज बहुत बड़े हो गए हैं. आज जस्टिस लोढ़ा क्या चाहते हैं कि मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम, अरुणाचल के वोट भी महाराष्ट्र, गुजरात के बराबर हों. ये बहुत ही विचित्र बात है. इसके बाद क्या होगा?

कश्मीर अब भी संकट में है और इसका समाधान बहुत जल्द होता नहीं दिख रहा है. छात्र परीक्षा नहीं दे पा रहे हैं. कम-से-कम 500 छात्र जेलों में बंद हैं, हालांकि अनधिकारिक तौर पर ये संख्या कुछ हजार में बताई जा रही है. छात्रों के एक शैक्षणिक वर्ष को बर्बाद करने का कोई फायदा नहीं, खास तौर पर एक ऐसी समस्या की वजह से, जो मालूम नहीं कब तक जारी रहे. सिविल सोसाइटी के कुछ लोग वहां गए और गिलानी आदि से मिले, जो अच्छी बात है. कुछ संवाद शुरू होना चाहिए. आखिरकार भारत एक जीवंत लोकतंत्र है. सिविल सोसाइटी को कश्मीर मामले में कुछ पहलकदमी करनी चाहिए, लेकिन वहां जो वातावरण है, वो (केंद्र सरकार की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए) बहुत ही निराशाजनक है. हमें उम्मीद करनी चाहिए कि कुछ अच्छा काम हो.

इन सबसे बढ़कर एक खबर आई कि आठ अंडर-ट्रायल कैदी भोपाल जेल से फरार हो गए और पुलिस द्वारा मारे गए. अब पहली बात तो ये है कि वे अंडर-ट्रायल कैदी थे (भले ही वह आतंकवाद के लिए हो या किसी और चीज़ के लिए) सुरक्षा की ज़िम्मेदारी जेल अधिकारियों की है, वे कैसे फरार हो सकते थे? 35 फीट दीवार फलांग कर भाग जाना आश्चर्यजनक है. ये फर्जी एनकाउंटर नज़र आता है. पहले तो आपने उन्हें जाने दिया, ताकि उन्हें शूट किया जा सके और उन्हें शूट कर दिया. सुप्रीम कोर्ट ने एक फैसला दिया है, जो आज भी प्रासंगिक है, जिसमें कहा गया था कि एनकाउंटर को विशेष तरीके से देखना चाहिए. आखिरकार सरकार, पुलिस, आईपीएस अफसरों पर (चाहे वो राज्य के डीजीपी हों या जेल के डीजी) बहुत पैसे खर्च करती है, आप ऐसी चीज़ों की अनुमति नहीं दे सकते. समस्या यह है कि मौजूदा सरकार देश में एक ऐसा वातावरण तैयार कर रही है, जिसमें आप किसी व्यक्ति को आतंकवादी बता दीजिए और उसे गोली मार दीजिए और वो न्यायोचित है. ये बहुत खतरनाक नजीर बनाई जा रही है. ऐसे ही लोकतंत्र का दम घोंटा जाता है. किसी को बदनाम कर दीजिए (भले ही वह निर्दोष हो) और उसे मार दीजिए, ये काम करने का ठीक तरीका नहीं हो सकता है. अगर वे वाकई आतंकवादी थे, तो इसके लिए जो निर्धारित प्रक्रिया है, वो पूरी होनी चाहिए थी और उन्हें कानूनन फांसी होनी चाहिए थी. अगर उन्हें बरी कर दिया जाता, तो ये ज़ाहिर था कि उनके खिलाफ सबूत कमज़ोर थे. लेकिन यह तरीका अपनाया जाना निंदनीय है. भले ही अंधी राष्ट्रवादिता कहती है कि जो भी इन लोगों के मानवाधिकार की बात करता है, वो पाकिस्तान समर्थक है, राष्ट्रद्रोही है, मैं यह कहने का जोखिम उठा रहा हूं. मैं कभी राष्ट्रद्रोही नहीं हो सकता, मैं कट्टर राष्ट्रवादी हूं. मुझे गर्व है कि मैं इस राष्ट्र का हिस्सा हूं, क्योंकि यहां कानून का राज चलता है. हर चीज़ एक प्रक्रिया के हिसाब से चलती है- भारतीय दंड संहिता है, जेल मैन्युअल है, हर चीज़ अपनी जगह है. यहां तक कि नाथू राम गोडसे, जिसने राष्ट्रपिता की हत्या की थी और हत्या के बाद भागने का प्रयास भी नहीं किया था और जिसने आत्मसमर्पण किया था, उसे फांसी देने के लिए तीन साल का समय लगा था, जबकि वह पहले दिन से कह रहा था कि हां, मैंने गांधी को मारा है. उसे फांसी देने में देरी क्यों हुई, क्योंकि यहां न्याय का एक तंत्र है, जिसका पालन किया जाना चाहिए. लिहाज़ा स्थापित व्यवस्था (तंत्र) को तोड़ने

का कोई औचित्य नहीं है. यदि तंत्र में किसी बदलाव की आवश्यकता है, तो इसके लिए पार्लियामेंट है. इस तरह का काम करने वाले और गोली मार कर खुश होने वाले पुलिस अफसरों या जेलरों को आप नहीं रख सकते. सिविल सोसाइटी के लोग इस घटना की जांच की मांग कर रहे हैं, जबकि सरकार ने जांच करवाने से इनकार कर दिया है, लेकिन यह विषय यहीं समाप्त नहीं होता है. इस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए क्योंकि यह समस्या तो पूरे देश में है. हर जेल में इस तरह के लोग बंद हैं, तो क्या आप उन सबको जेल में ही मार देना चाहते हैं? यह किसी तरह से बुद्धिमतापूर्ण नहीं है.

इसके बाद जो मुद्दा है, वो है सरकार और न्यायपालिका के बीच चल रही रस्साकशी का. बदकिस्मती से इस झगड़े की शुरुआत (अगर मैं गलत नहीं हूं) तो जस्टिस वर्मा द्वारा 1993 में की गई थी, जब उन्होंने एकतरफा तौर पर ये फैसला दिया था कि एक कॉलिजियम होगी, जो फैसला करेगी कि कौन जज होगा? यह दुनिया में अपनी तरह का अनोखा मामला है, जहां जज ही जज की नियुक्ति करता है. दुनिया के किसी भी हिस्से में जज दूसरे जज की नियुक्ति नहीं करते हैं. आमतौर पर कार्यपालिका ये काम करती है या कोई स्वतंत्र निकाय करती है.

सरकार ने राष्ट्रीय न्यायिक जवाबदेही बिल लाने की कोशिश की, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने ख़ारिज कर दिया था. लेकिन जो भी कार्यविधि हो, जजों की नियुक्ति में सरकार और न्यायपालिका के बीच परामर्श होनी चाहिए. आज भी जो संवैधानिक प्रक्रिया है, वो ये है कि जजों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से होगी. कुछ दिनों बाद जब जजों को लगा कि परामर्श फॉर्मेलिटी मात्र रह गई है, तो उन्होंने कहा कि परामर्श काफी नहीं, इस में संवर्तन (concurrence) होना चाहिए, यानी अगर मुख्य न्यायाधीश राज़ी नहीं हैं, तो आप नियुक्ति नहीं कर सकते हैं. यहां तक भी ठीक है और मैं समझता हूं कि यह एक स्थिर व्यवस्था है और आप इस व्यवस्था को बहाल कर सकते हैं. सरकार और न्यायपालिका जब सहमत हों, तब ही किसी जज की नियुक्ति होनी चाहिए और अगर किसी नाम पर असहमति है, तो वो नियुक्ति नहीं होनी चाहिए, भले ही वह व्यक्ति कितना ही योग्य क्यों न हो. जब तक इस मसले को हल नहीं कर लिया जाता है, तब तक एक बार फिर हम अपने संविधान के एक स्तम्भ को कमज़ोर कर रहे हैं.

न्यायपालिका की आज़ादी. यहां मैं यह कह सकता हूं कि न्यायपालिका द्वारा किया जाने वाला हर काम समझदारी भरा नहीं होता. मैं यहां ज़रा कम गंभीर विषय पर आ रहा हूं. बीसीसीआई पर गठित किया गया लोढ़ा पैनेल एक मजाक है. यह कहने में बहुत अच्छा लगता है कि एक राज्य के पास केवल एक वोट होना चाहिए. जैसे आज गुजरात के पास तीन वोट (एसोसिएशन्स) हैं. चूंकि बीसीसीआई की स्थापना 1930 में आज़ादी से पहले हुई थी, तब महाराजा क्रिकेट को वित्त मुहैया करा रहे थे और उनके अपने एसोसिएशन्स थे, जो आज बहुत बड़े हो गए हैं. आज जस्टिस लोढ़ा क्या चाहते हैं कि मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम, अरुणाचल के वोट भी महाराष्ट्र, गुजरात के बराबर हों. ये बहुत ही विचित्र बात है. इसके बाद क्या होगा? हम एक रास्ता खोल रहे हैं, जिसके जरिए कॉर्पोरेट का पैसा बीसीसीआई को ही हज़म कर लेगा. अगर एक राज्य एक वोट होगा, तो कोई कॉर्पोरेट आएगा और उसे खरीद लेगा. कोई आठ-दस राज्यों को खरीद लेगा, जहां कोई क्रिकेट नहीं, कोई पैसा नहीं है. जहां क्रिकेट कमज़ोर है, वहां किसी बदनीयत कॉर्पोरेट को आने से कौन रोक सकता है, कि वो आए और बीसीसीआई पर क़ब्ज़ा कर ले और बीसीसीआई हमेशा के लिए खत्म हो जाए. यह एक समस्या तो है, लेकिन इसका जो समाधान है, वो समस्या से भी ख़राब है. मुझे नहीं मालूम जस्टिस लोढ़ा कौन हैं या उनकी मानसिकता क्या है? उनका अपमान किये बगैर कभी-कभी यह शक होता है कि शायद वे क्रिकेट के प्रभावशाली लोगों से प्रभावित रहे हों, जो बीसीसीआई में घुसने की इच्छा रखता हो और जो बीसीसीआई की मौजूदा लोकतांत्रिक प्रक्रिया में नहीं कर पा रहा हो. इस संस्था को और अधिक लोकतांत्रिक, अधिक प्रचारित करने के बजाय आप सीट खरीदने की गुंजाइश पैदा कर रहे हैं.

जस्टिस ठाकुर की पहचान ईमानदार व्यक्ति के रूप में है. उन्हें सोच-समझ कर फैसला करना चाहिए, जो क्रिकेट को आगे ले जा सके. लिहाज़ा न्यायपालिका को भी अपना आत्मविश्लेषण करना चाहिए, सरकार भी कमज़ोर विकेट पर खड़ी है क्योंकि वो जजों की नियुक्ति रोकने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती. देखते हैं क्या होता है. ■

feedback@chauthiduniya.com

पाठकों की दुनिया

कश्मीरियों का दर्द

ये नाइंसाफी बंद होनी चाहिए (31 अक्टूबर-6 नवंबर) उमर फ़ारूक़ के साथ संतोष भारतीय की बातचीत पढ़ी. इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि कश्मीर के लोग धरती के जन्नत में रहकर भी जहन्नुम जैसी जिंदगी जी रहे हैं. अपने घर और अपनी जमीन पर संगीनों के साये में रहना किसे अच्छा लगता है. पिछले कई महीनों से रोजमर्रा की जरूरतों को भी नहीं पूरा कर पा रही एक बड़ी आबादी अपने हालात के लिए किसे दोष देती होगी और उनका गुस्सा कैसा होगा, सहज ही समझा जा सकता है. अगर हम सब भारतीय और भारत की सरकार यह मानती है कि जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, तो हमें कश्मीरियों के साथ अपने व्यवहार से इसे साबित करना होगा. हाल के दिनों में जब दंगाग्रस्त बिहार-यूपी के कई जिलों में इंटरनेट सेवा बंद की गई, तो विरोध में लोग सड़कों पर आ गए. वे कश्मीरी युवा क्या सोचते होंगे जिन्हें कई महीनों बिना इंटरनेट के काटना पड़ता है.

- बिपुल कुमार, *दिल्ली*

दंगों का दंश

दूर रहिए दंगों से (31 अक्टूबर-6 नवंबर) शीर्षक से इर्शादुल हक का लेख पढ़ा. यह सच में बहुत दुखद है कि कोई भी साल ऐसा नहीं होता, जो बिना किसी दंगे के गुजर गया हो. हर साल देश का कोई ना कोई हिस्सा दंगों की चपेट में आ ही जाता है. कई बार तो यह कई राज्यों और जिलों को भी अपनी चपेट में ले लेता है. इन सबमें निर्दोष लोगों की मृत्यु या जख्म और जान-माल की हानि देख कर कलेजा मुंह को आ जाता है. आखिर क्यों वर्षों से आसपास मिलजुलकर रहने वाले एक-दूसरे की जान के दुश्मन बन जाते हैं और आपसी सौहार्द सांप्रदायिकता की भेंट चढ़ जाता है? शायद इसका जवाब किसी के पास नहीं है, क्योंकि समाज को दंगों में झोंकने वाले ज्यादातर वे ही लोग होते हैं, जिन्हें समाज अपना अगुआ मानता है. यह दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश ही नहीं पूरी दुनिया को शांति, सद्भाव और सौहार्द का संदेश देने वाला बिहार भी दंगों की आग में झुलसने को मजबूर है.

- निर्मल आनंद, *छपरा, बिहार*

जानलेवा औद्योगीकरण

यह कैसा औद्योगीकरण (31 अक्टूबर-6 नवंबर) शीर्षक से प्रशांत शरण का लेख पढ़ा. देश और अर्थव्यवस्था के विकास के लिए औद्योगीकरण जरूरी है, लेकिन यह आम लोगों के जान की कीमत पर हो, यह कतई ठीक नहीं. झारखण्ड में हाल के दिनों में औद्योगीकरण के नाम पर जिस तरह से आम लोगों के साथ ज्यादती हो रही है, एक लोकतंत्र में यह बेहद ही शर्मनाक है. सरकारें आम लोगों के हित के लिए ही होती हैं और सरकार द्वारा किए जाने वाले हर काम का गंतव्य जनता का हित ही होना चाहिए, लेकिन यह कैसा जनहित है और इसका गंतव्य किस तरह से जनता की भलाई है कि फैक्ट्रियां लगाने के लिए लोगों से जमीन लेकर, उन्हें विस्थापित करने के बाद, अपने हक के लिए आवाज उठा रहे लोगों पर गोलियां चला दी जाती है. सरकार को जवाब देना चाहिए कि आखिर क्यों उस कानून को लागू नहीं किया जा रहा है, जो एनटीपीसी परियोजना के लिए भूमि अधिग्रहण को लेकर हुए हंगामे के बाद बनाया गया था.

- सूरज कुमार, *देवघर, झारखण्ड*

कुपोषित व्यवस्था

शिवराज के शासन का सच है कुपोषण (31 अक्टूबर-6 नवंबर) शीर्षक से लेख पढ़ा. मध्यप्रदेश जैसे राज्य के कई बड़े जिलों में 50 प्रतिशत से ज्यादा बच्चों के कुपोषण के शिकार होने की खबर वाकई चिंतित करती है. राज्य में आंगनबाड़ी योजना एक तरह से सिर्फ कागजों पर चल रही है, अस्पताल खुद बीमार पड़े हैं. ऐसा नहीं है कि बच्चों में कुपोषण अचानक से आ जाता है. गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य की देखरेख के लिए राज्य में कई योजनाएं चल रही हैं, लेकिन शायद ही किसी योजना का जमीनी वास्ता हो. अगर होता तो हालात इतने बदतर तो ना होते. यह दुर्भाग्य है कि इस बड़े सूबे में, जहां पिछले एक दशक से ज्यादा से शासन की डोर एक ही आदमी के पास है, वहां आज भी नौनिहाल कुपोषण के शिकार होकर दम तोड़ रहे हैं. हमारी सरकारें बच्चों को देश का कर्णधार कहती है, लेकिन व्यवस्था के काम करने के तरीकों से स्पष्ट दिख जाता है कि हमारे नीतिनियंताओं का कितना ध्यान है, देश के कर्णधारों के कल को बेहतर बनाने पर.

- अनुराग गुप्ता, *सतना, मध्यप्रदेश*

गिरता सियासी स्तर

जब तोप मुकाबिल हो में संतोष भारतीय की संपादकीय राजनीति जनता का विश्वास समाप्त करेगी (31 अक्टूबर-6 नवंबर) पढ़कर भारतीय लोकतंत्र के भविष्य को लेकर मन में निराशा के भाव उत्पन्न हुए. क्या यही है गांधी के सपनों का भारत, जहां सियासी हित देशहित पर हावी हो जाय, जहां जनकल्याण की भावना सियासी कुनबों तक सिमट कर रह जाय. हमें आजादी तो मिली, लेकिन आम आदमी कभी भी वह आजादी नहीं पा सका कि वह अपने लिए खुद नीतियां बना सके, सरकार में शामिल हो सके. अब तो व्यवस्था भी उसी दिशा में काम कर रही है कि मजबूत को और मजबूत बनाया जाय. संपादकीय में सही लिखा गया है कि धीरे-धीरे यह देश कुछ चुने हुए परिवारों की जागीर बनने के रास्ते पर पाकिस्तान की तरह तेजी से चल पड़ा है.

- सत्यप्रकाश, *बेतिया, बिहार*

धर्म की राजनीति

राम भाजपा के या सपा के (31 अक्टूबर-6 नवंबर) शीर्षक से लिखे प्रभात रंजन दीन के लेख को पढ़कर लगा कि सच में हमारी सियासत का स्तर कितना गिर गया है. धार्मिक मुद्दों के आगे विकास और काम की बातें बौनी साबित हो रही हैं. लगता है कि राजनीतिक दल अब धार्मिक ठेकेदार बनने की तरफ कदम बढ़ा रहे हैं. सभी नेता खुद को अपने विपक्षी से ज्यादा धर्मानुरागी दिखाने की कोशिश कर रहे हैं. कई दशक बीत गए, लेकिन राम आज भी यूपी की सियासत में वोट बटोरने का साधन बने हुए हैं. उन गरीबों का हाल पूछने वाला कोई नहीं जिनकी पूरी दुनिया राम के मंदिर की सीढ़ियां ही है और निवाला राम का प्रसाद ही है. यह आस्था के नाम पर अपनी सियासत चमकाना नहीं तो और क्या है कि सिर्फ अयोध्या में ही राम के नाम पर केंद्र सरकार डेढ़ सौ करोड़ तो यूपी सरकार 22 करोड़ खर्च करने जा रही है.

- अमित मौर्या, *गोरखपुर, उत्तर प्रदेश*

पाठकों से...

सुधी पाठक, चौथी दुनिया में प्रकाशित रिपोर्ट्स-आलेखों पर आपकी प्रतिक्रियाएं सादर आमंत्रित हैं. आप अपनी बेबाक राय, सुझाव हमें डाक/ईमेल द्वारा भेज सकते हैं. आप हमारी आख-कान-नाक हैं. जहां तक आपकी पहुच है, वहां तक हमारी नज़र जाना संभव नहीं है. अख़बार को बेहतर बनाने में आपके सुझाव-विचार हमारी मदद करेंगे. हमें आपके पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी.

चौथी दुनिया
एफ-2, सेक्टर-11,
गौतम बुद्ध नगर (नोएडा)-201301, उत्तर प्रदेश.
Email: feedback@chauthiduniya.com

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

भारत में पाकिस्तान के बौद्धिक दलाल

मैं 11-12-13 सितंबर को कश्मीर में था. मैंने बकरीद कश्मीर में मनाई थी. बकरीद के बाद, मैंने प्रधानमंत्री को एक खत लिखा. इस खत में मैंने प्रधानमंत्री को कश्मीरियों की तकलीफ, उनकी मांगें, उनकी चिंताएं, जो भी मैंने अपनी आंखों से देखी-समझी, लिखने की कोशिश की. उस खत की शुरुआत में मैंने लिखा था कि मुझे इस पत्र के जवाब मिलने की उम्मीद प्रधानमंत्री कार्यालय से नहीं है और मेरा वो लिखा हुआ सच साबित हुआ. हमने प्रधानमंत्री को उस खत की रजिस्टर्ड प्रति भेजी, साधारण डाक और स्पीड पोस्ट से भेजी और अखबार में खुले खत के रूप में छाप भी दिया. पर प्रधानमंत्री जी या प्रधानमंत्री के कार्यालय से, एक साधारण सा जवाब भी नहीं आया. 'आपका पत्र मिला, आपके पत्र पर विचार किया जाएगा,' जो एक सामान्य शब्दावली होती है, उसमें भी हमें कोई उत्तर नहीं मिला. कोई बात नहीं, ये प्रधानमंत्री जी का फर्ज और उनके कार्यालय की कार्यक्षमता है.

मुझे हैरानी दूसरी बात से हुई कि इस पत्र को देश के अलावा दुनिया के बहुत सारे अखबारों और वेबसाइट ने उठाया. जब हम दुनिया कहते हैं, तो कई सारे देश उसमें आ जाते हैं, पर मैं यहां विशेष रूप से पाकिस्तान का उल्लेख करना चाहूंगा. पाकिस्तान में मीडिया ने, जिसमें प्रिंट और टेलीविजन दोनों शामिल हैं, जिस तरह से इस पत्र को उठाया और लगभग 5 से 6 दिन तक अपने यहां चर्चाएं कीं, वो मेरे लिए ज्यादा चिंताजनक हैं. पाकिस्तान के अखबार और टेलीविजन की अधिकतर हेडलाइंस थी, भारतीय पत्रकार से कश्मीर की असलियत बताई. संतोष भारतीय ने मोदी को आईना दिखाया. पूरे पाकिस्तान का मीडिया, जिसमें टेलीविजन के वो नाम शामिल थे, जिन्हें हम हिन्दुस्तान में काफी सम्मान से देखते हैं और वहां के वो अखबार, जिनके लेख हम यहां पढ़ते हैं और पाकिस्तान को जानने की कोशिश करते हैं, उन सबने मेरे इस खत को भारत के खिलाफ, भारत की जनता के खिलाफ, भारत की सरकार के खिलाफ एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया. खत लिखते समय मैंने ये कभी नहीं सोचा था कि मेरे पत्र का इस्तेमाल पाकिस्तान का मीडिया अपने पक्ष में करेगा.

दरअसल, ये कश्मीर का दर्द था, जिसे मैंने अपने देश के लोगों को बताने की कोशिश की थी. अगर ये दर्द पाकिस्तान की जनता के पास पहुंचता, तब भी मुझे खुशी होती, लेकिन इस दर्द का पाकिस्तान का मीडिया या सरकार ने जिस तरह से मजाक बनाया, इसका मुझे बहुत अफसोस है और हृदय से इसके लिए मेरे मन में दुख है. तब मैंने पाकिस्तान की मनोस्थिति का विश्लेषण करना शुरू किया. मैंने पाया कि पाकिस्तान हमारे दर्द का फायदा उठाने की कोशिश तो करता ही है, उस दर्द का व्यापार भी करने की कोशिश करता है.

दरअसल, कश्मीर के मसले का जितना नुकसान पाकिस्तान ने किया है, उतना दुनिया में किसी और ने नहीं किया है. कश्मीर के लोग अपनी लड़ाई, चाहे वो सेल्फ रेस्पेक्ट की हो, आजादी की हो, सम्मान की हो, हक की हो, बहुत सालों से लड़ रहे हैं. वहां के नौजवानों की अपनी तकलीफें हैं, जिसे वो बयान करना चाहते हैं कि सरकार सुने, लेकिन पाकिस्तान कश्मीर में घटने वाली किसी भी घटना को अपने द्वारा किया हुआ बताने लगता है. कश्मीर में कोई जुलूस निकले, फौरन पाकिस्तान का कोई संगठन आकर कहेगा कि हमने लोगों से कहा कि जुलूस निकालो. कश्मीर में कहीं पत्थर चले, तो पाकिस्तान का कोई ग्रुप कहेगा कि हमने कहा कि पत्थर मारो. कुछ भी कश्मीर में होता है, कश्मीर के लोग अपने खून और अपनी जिन्दगी से उसकी इबारत लिखते हैं, लेकिन उस कोशिश को पाकिस्तान हमेशा पूरी तरह से चुराने की कोशिश करता है. इससे होता ये है कि ये लड़ाई कश्मीरियों की नहीं, पाकिस्तान की लड़ाई बन जाती है. पाकिस्तान वहां पर कुछ कर रहा है. पाकिस्तान पैसे भेज रहा है. पाकिस्तान स्कूल जलवा रहा है और तब मुझे हंसी आती है कि जो पाकिस्तान अपने को नहीं संभाल पा रहा है, वो पाकिस्तान कश्मीर के नाम पर अपने संगठनों, जिसमें आईएसआई, हिजबुल, जमात-उद-दावा शामिल है, को खुली छूट देता है कि वो कश्मीरियों के दर्द का दुनिया में व्यापार करे. और होता क्या है कि सारी दुनिया में पाकिस्तान में बैठे कुछ संगठन मुसलमानों से कश्मीरियों की मदद के नाम पर पैसे मांगते हैं और उन पैसों से पाकिस्तान में उनके महल खड़े हो रहे हैं, उनके बच्चे विदेशों में पढ़ रहे हैं. वो कश्मीरियों के दर्द का जो व्यापार करते हैं, उसकी कहानी स्वयं पाकिस्तान के टेलीविजन पर सुनी जा सकती है. जिस मसले को दोनों देशों के लोग मोहब्बत से हल करना चाहते हैं, उस मसले को पाकिस्तान में ही बैठे कुछ संगठन व्यापार का एक बहुत सफल जरिया बना चुके हैं.

जब मैंने देखा कि पाकिस्तान का मीडिया मेरे इस खत का इस्तेमाल कश्मीरियों के दर्द को भटकाने और कश्मीर सहित संपूर्ण भारत के खिलाफ एक हथियार के तौर पर कर रहा है, तो मुझे उनके ऊपर, अपने देश के उस मीडिया से ज्यादा क्रोध आया, जो कश्मीर की समस्या को नहीं समझते हैं.

मैं यहां सिर्फ इतना कह सकता हूं कि अगर पाकिस्तान की सरकार, पाकिस्तान का मीडिया और पाकिस्तान में बैठे वो संगठन, जो भारत में दहशतगर्द भेजते हैं, कश्मीर के मसले से अपने को अलग कर लें तो कश्मीर के लोग और भारत की सरकार इस मसले को हल करने में बहुत ज्यादा वक्त नहीं लगाएगी. इस मसले को हल से दूर ले जाने का काम पाकिस्तान के लोग कर रहे हैं.

इतना ही नहीं, पाकिस्तान में अगर हिम्मत है, तो उसे सारी दुनिया से कहना चाहिए कि हम पाकिस्तान के कब्जे में आने वाले कश्मीर के हर हिस्से से अपनी फौज हटा लेंगे, जैसा यूनाइटेड नेशन्स के प्रस्ताव में है. हम वहां के नागरिकों को ये सुविधा देंगे कि वो भारत के हिस्से वाले कश्मीर में जा कर, बातचीत कर, पूरे कश्मीर में रायशुमारी की बात करें. पाकिस्तान ने तो आज तक इसका कमिटमेंट किया ही नहीं. सिर्फ कुछ लोग कहते हैं कि कभी मुशर्रफ साहब ने कहा था. मुशर्रफ साहब ने कहा था, वो पाकिस्तान की सरकार का कमिटमेंट नहीं था. उस कमिटमेंट को दोबारा पाकिस्तान की सरकार को दोहराना चाहिए और भारत सरकार के सामने यह प्रस्ताव देना चाहिए कि हम ये-ये चीजें करने के लिए तैयार हैं. आप इस पर हमें जवाब दीजिए. इसकी जगह वो कहते हैं कि कश्मीर का मसला पहले हल करो. कश्मीर का मसला हल कैसे होगा? पाकिस्तान की तरफ से बातचीत के टर्म ऑफ रेफरेंस क्या हैं?

वैसे पाकिस्तान का भाग्य अच्छा है. उसे भारत में बौद्धिक दलाल मिले हुए हैं. वो बौद्धिक दलाल उसका काम बखूबी कर रहे हैं. पहले, पाकिस्तान कितना शक्तिशाली है, पाकिस्तान कैसे भारत की नाक में ऊंगली कर सकता है, आंख में ऊंगली कर सकता है, ये समझाने के लिए उसे अपना प्रचार तंत्र इस्तेमाल करना पड़ता है. पर, भारत में बौद्धिक दलाल, जो कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी दोनों में हैं, ये पाकिस्तान का गाना गाने में उस्ताद हैं. हर चीज के पीछे पाकिस्तान, हर बुराई के पीछे पाकिस्तान, हर कमजोरी के पीछे पाकिस्तान, हर भ्रष्टाचार के पीछे पाकिस्तान. पाकिस्तान इतना बड़ा है, जो हिन्दुस्तान को जब चाहे तब हिला दे. ये भूल जाते हैं कि ये 125 करोड़ का देश है, चाहे वो मनमोहन सिंह का जमाना रहा हो या नरेंद्र मोदी का जमाना हो. क्या नरेंद्र मोदी जी इस बात से सहमत हैं कि पाकिस्तान इतना शक्तिशाली है कि जब चाहे तब इंडिया को हिला दे, जब चाहे तब भारत की नीतियां बदलवा दे, जब चाहे तब भारत को बेइज्जत कर दे. मेरा अपना मानना है कि शायद ऐसा नहीं है. लेकिन, पाकिस्तान को बड़ा बनाने में भारत के बौद्धिक दलालों का बहुत बड़ा रोल है. ये टेलीविजन में भी चीखते-चिल्लाते हैं और प्रिंट में भी लिखते हैं. इन्हें पहचानना जरूरी है और ये बताना जरूरी है कि पाकिस्तान ताकतवर नहीं है, भारत ताकतवर है. पाकिस्तान की हैसियत नहीं है, भारत की हैसियत है. पर, मैं फिर कहूंगा कि पाकिस्तान इस मसले में सौभाग्यशाली है कि उसे भारत में बौद्धिक दलाल मिले हैं, जो उसका प्रचार अपने पैसे पर, अपनी जुबान से बेखौफ, बिना हिचक और खुलकर कर रहे हैं.

> **मैं यहां सिर्फ इतना कह सकता हूं कि अगर पाकिस्तान की सरकार, पाकिस्तान का मीडिया और पाकिस्तान में बैठे वो संगठन, जो भारत में दहशतगर्द भेजते हैं, कश्मीर के मसले से अपने को अलग कर लें तो कश्मीर के लोग और भारत की सरकार इस मसले को हल करने में बहुत ज्यादा वक्त नहीं लगाएगी. इस मसले को हल से दूर ले जाने का काम पाकिस्तान के लोग कर रहे हैं.**

यही अफसोस है कि कश्मीर का मसला दिनोंदिन उलझता जा रहा है. बलूचिस्तान में पाकिस्तान जो कर रहा है, उसका आरोप वो हिन्दुस्तान की सेना के ऊपर लगाता है. हम अगर दोनों तरफ की बात सही मान लें, तो हिन्दुस्तान की सेना भी जो कर रही है, उससे ज्यादा पाकिस्तान की सेना बलूचिस्तान में कर रही है. इसी अंक में हमने बलूचिस्तान के लोगों की तकलीफ भी छापी है. क्या पाकिस्तान मेरे जैसे पत्रकार को, मेरे जैसे दूसरे पत्रकारों को, जैसे हम कश्मीर में आजादी से गए, क्या वो बलूचिस्तान जाने की आजादी देगा? क्या हमें पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में घूमने की इजाजत देगा? अगर देगा, तो हम मानेंगे कि पाकिस्तान के लोग कश्मीर के मसले पर संजीदा हैं और कश्मीर के मसले को भटकाना नहीं चाहते हैं, लेकिन हो उल्टा रहा है. पाकिस्तान किसी भी ऐसे अवसर को नहीं गंवाता, जिससे कश्मीर के लोगों के संघर्ष की साख खत्म हो जाए. वो इसे अपने द्वारा किया हुआ कारनामा बताता है और ये कश्मीरियों को सबसे ज्यादा दुखी भी करता है, सबसे ज्यादा परेशान भी करता है और सबसे ज्यादा निराश भी करता है. इसलिए, आज मैं विनम्रता से पाकिस्तान का मीडिया और सरकार से कहना चाहता हूं कि कृपया, कश्मीर के मसले से अपना ध्यान हटाइए और अपने कब्जे वाले कश्मीर पर ध्यान दीजिए और बलूचिस्तान पर ध्यान केंद्रित कीजिए. बलूचिस्तान सिर्फ प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के कहने से चर्चा में नहीं आया. बलूचिस्तान पहले से चर्चा में था, लोगों की नजर में नहीं था. विश्व की सारी सरकारों को, और खास कर भारत और पाकिस्तान की सरकारों को, अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के अधिकारों के लिए ज्यादा सचेत होना चाहिए और तभी भारत में लोकतंत्र सफल होगा और तभी पाकिस्तान में, जो तथाकथित लोकतंत्र है, उसको भी कुछ साख मिलेगी. ■

editor@chauthiduniya.com

> **वैसे पाकिस्तान का भाग्य अच्छा है. उसे भारत में बौद्धिक दलाल मिले हुए हैं. वो बौद्धिक दलाल उसका काम बखूबी कर रहे हैं. पहले, पाकिस्तान कितना शक्तिशाली है, पाकिस्तान कैसे भारत की नाक में ऊंगली कर सकता है, आंख में ऊंगली कर सकता है, ये समझाने के लिए उसे अपना प्रचार तंत्र इस्तेमाल करना पड़ता. पर, भारत में बौद्धिक दलाल, जो कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी दोनों में हैं, ये पाकिस्तान का गाना गाने में उस्ताद हैं. हर चीज के पीछे पाकिस्तान, हर बुराई के पीछे पाकिस्तान, हर कमजोरी के पीछे पाकिस्तान, हर भ्रष्टाचार के पीछे पाकिस्तान. पाकिस्तान इतना बड़ा है, जो हिन्दुस्तान को जब चाहे तब हिला दे.**

मत-मतांतर

हिन्द स्वराज में लिखे राज्य पद्धति पर मैं क़ायम हूं

महात्मा गांधी द्वारा 5 अक्तूबर 1945 को जवाहरलाल नेहरू को लिखा गया पत्र यहां दिया जा रहा है. इस पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी ने जो कुछ हिन्द स्वराज में लिखा था, उस पर वे अंत तक डटे रहे थे. वे यह भी चाहते थे कि कांग्रेस उनके इस प्रारूप पर विचार करे और काम भी करे.

05 अक्तूबर, 1945
चि. जवाहरलाल,

तुमको लिखने को तो कई दिनों से इरादा किया था, लेकिन आज ही उसका अमल कर सकता हूं. अंग्रेजी में लिखूं या हिन्दुस्तानी में, यह भी मेरे सामने सवाल रहा था. आखिर में मैंने हिन्दुस्तानी में ही लिखने का पसंद किया.

पहली बात तो हमारे बीच में जो बड़ा मतभेद हुआ है, उसकी है. अगर वह भेद सचमुच है तो लोगों को भी जानना चाहिए, क्योंकि उनको अंधेरे में रखने से हमारा स्वराज का काम रुकता है. मैंने कहा है कि हिन्द स्वराज में मैंने लिखा है उस राज्य पद्धति पर मैं बिल्कुल कायम हूं. यह सिर्फ कहने की बात नहीं है, लेकिन जो चीज मैंने सन् 1909 में लिखी है, उसी चीज का सत्य मैंने अनुभव से आज तक पाया है. आखिर में एक ही उसे मानने वाला रह जाऊं, उसका मुझको जरा-सा भी दुःख न होगा, क्योंकि मैं जैसे सत्य पाता हूं, उसका मैं साक्षी बन सकता हूं. हिन्द स्वराज मेरे सामने नहीं है. अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भाषा में खेंचूं, पीछे वह चित्र सन् 1909 जैसा ही है या नहीं, उसकी मुझे दरकार न रहेगी, न तुम्हें रहनी चाहिए. आखिर में तो मैंने पहले क्या कहा था, उसे सिद्ध करना नहीं है, आज मैं क्या कहता हूं, वही जानना आवश्यक है. मैं यह मानता हूं कि अगर हिन्दुस्तान को कल देहातों में ही रहना होगा, झोपड़ियों में, महलों में नहीं. कई अरब आदमी शहरों और महलों में सुख से और शांति से कभी रह नहीं सकते, न एक-दूसरों का खून करके-मायने हिंसा से, न झूठ से-यानी असत्य से. सिवाय इस जोड़ी के (यानी सत्य और अहिंसा) मनुष्य जाति का नाश ही है, उसमें मुझे जरा-सा भी शक नहीं है. उस सत्य और अहिंसा का दर्शन केवल देहातों की सादगी में ही कर सकते हैं. वह सादगी चर्खा में और चर्खा में जो चीज भरी है, उसी पर निर्भर है. मुझे कोई डर नहीं है कि दुनिया उल्टी ओर ही जा रही दिखती है. यों तो पतंगा जब अपने नाश की ओर जाता है, तब सबसे ज्यादा चक्कर खाता है और चक्कर खाते-खाते जल जाता है. हो सकता है कि हिन्दुस्तान इस पतंगे के चक्कर में से न बच सके. मेरा फर्ज है कि आखिर दम तक उसमें से उसे और उसके मार्फत जगत को बचाने की कोशिश करूं. मेरे कहने का निचोड़ यह है कि मनुष्य जीवन के लिए जितनी जरूरत की चीज है, उस पर निजी काबू रहना ही चाहिए-अगर न रहे तो व्यक्ति बच ही नहीं सकता है. आखिर तो जगत व्यक्तियों का ही बना है. बूंद नहीं है तो समुद्र नहीं है. यह तो मैंने मोटी बात ही कही-कोई नई बात नहीं की.

लेकिन हिन्द स्वराज में भी मैंने यह बात नहीं की है. आधुनिक शास्त्र की कदर करते हुए पुरानी बात को मैं आधुनिक शास्त्र की निगाह से देखता हूं, तो पुरानी बात इस नए लिबास में मुझे बहुत मीठी लगती है. अगर ऐसा समझोगे कि मैं आज के देहातों की बात करता हूं, तो मेरी बात नहीं समझोगे. मेरे देहात आज मेरी कल्पना में ही हैं. आखिर में तो हर एक मनुष्य अपनी कल्पना की दुनिया में ही रहता है. इस काल्पनिक देहात में देहाती जड़ नहीं होगा-शुद्ध चैतन्य होगा. वह गंदगी में, अंधेरे कमरे में जानवर की जिन्दगी बसर नहीं करेगा, मर्द और औरत दोनों आजादी से रहेंगे और सारे जगत के साथ मुकाबला करने को तैयार रहेंगे. वहां न हैजा होगा, न मरकी (प्लेग) होगी, न चेचक होंगे. कोई आलस्य में रह नहीं सकता है, न कोई ऐश-आराम में रहेगा. सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी. इतनी चीज होते हुए मैं ऐसी बहुत-सी चीज का ख्याल करा सकता हूं, जो बड़े पैमाने पर बनेगी. शायद रेलवे भी होगी, डाकघर, तारघर भी होंगे. क्या होगा, क्या नहीं, उसका मुझे पता नहीं, न मुझको उसकी फिक्र है. असली बात को मैं कायम कर सकूं, तो बाकी आने की और रहने की खूबी रहेगी और असली बात को छोड़ दूं तो सब छोड़ देता हूं.

उस रोज जब हम आखिर के दिन वर्किंग कमेटी में बैठे थे, तो ऐसा कुछ फैसला हुआ था कि इसी चीज को साफ करने के लिए वर्किंग कमेटी 2-3 दिन के लिए बैठेगी. बैठेगी तो मुझे अच्छा लगेगा, लेकिन न बैठे तब भी मैं चाहता हूं कि हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लें. उसके दो सबब हैं. हमारा संबंध सिर्फ राज कारण का नहीं है, उससे कई दरजे गहरा है. उस गहराई का मेरे पास कोई नाप नहीं है. वह संबंध टूट भी नहीं सकता, इसलिए मैं चाहूंगा कि हम दोनों में से एक भी अपने को निकम्मा नहीं समझते हैं. हम दोनों हिन्दुस्तान की आजादी के लिए ही जिन्दा रहते हैं, और उसी आजादी के लिए हमको मरना भी अच्छा लगेगा. हमें किसी की तारीफ की दरकार नहीं है. तारीफ हो या गालियां-एक ही चीज हैं. खिदमत में उसे कोई जगह ही नहीं है. अगर मैं 125 वर्ष तक सेवा करते-करते जिन्दा रहने की इच्छा करता हूं, तब भी मैं आखिर में बूढ़ा हूं और तुम मुकाबले में जवान हो. इसी कारण मैंने कहा है कि मेरे वारिस तुम हो. कम से कम उस वारिस को मैं समझ लूं और मैं क्या हूं, वह भी वारिस समझ ले तो अच्छा ही है और मुझे चैन रहेगा.

और एक बात. मैंने तुमको कस्तूरबा ट्रस्ट के बारे में और हिन्दुस्तानी के बारे में लिखा था. तुमने सोचकर लिखने को कहा था. मैं पाता हूं कि हिन्दुस्तानी सभा में तो तुम्हारा नाम है ही. नाणावटी ने मुझको याद दिलाया कि तुम्हारे पास और मौलाना साहब के पास वह पहुंच गया था और तुमने अपने दस्तखत दे दिए हैं. वह तो सन् 1942 में था. वह जमाना गुजर गया. आज हिन्दुस्तानी कहां है, उसे जानते हो. उसी दस्तखत पर काय्म हो तो मैं उस बारे में तुमसे काम लेना चाहता हूं. दौड़-धूप की जरूरत नहीं रहेगी, लेकिन थोड़ा काम करने की जरूरत रहेगी.

कस्तूरबा स्मारक का काम पेचीदा है. ऊपर जो मैंने लिखा है, वह अगर तुमको चुभेगा या चुभता है, तो कस्तूरबा स्मारक में भी आकर तुमको चैन नहीं रह सकेगा, यह मैं समझता हूं.

आखिर की बात शरत बाबू के साथ जो-कुछ चिंगारियां फूटी हैं, वह है. इससे मुझे दर्द हुआ है. उसकी जड़ मैं नहीं समझ सका. तुमको जो कहा है, इतना ही है, बाकी कुछ नहीं रहा है तो मुझे कुछ पूछना नहीं है. लेकिन कुछ समझाने जैसा है तो मुझको समझने की दरकार है.

इस सबके बारे में अगर हमें मिलना ही चाहिए तो हमारे मिलने का वख्त निकालना चाहिए. तुम बहुत काम कर रहे हो, स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा. इन्दु ठीक होगी.

बापू के आशीर्वाद

मुलायम को हुआ नीतीश की ताक़त का अहसास

बिहार के उपचुनावों में महागठबंधन की जीत ने नीतीश कुमार - लालू प्रसाद को जनता परिवार के दलों को एक छतरी में लाने की प्रेरणा दी, क्योंकि कांग्रेस के साथ ऐसा गठबंधन देश के सभी राज्यों, खास कर हिन्दी पट्टी, में असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर है. सो, जनता परिवार के दलों को एक छतरी के नीचे लाने या उनके विलय की पहल बिहार उपचुनाव के कुछ महीनों बाद आरंभ हुई. सपा सुप्रीमो मुलायम सिंह यादव ने इस पहल पर हामी भरी. तय हुआ कि नई पार्टी और नए निशान पर ही बिहार चुनाव लड़े जाएंगे. विचार-विमर्श की लंबी प्रक्रिया के बाद सब कुछ तय हो गया- प्रस्तावित दल का अध्यक्ष मुलायम सिंह को घोषित किया गया, ससंदीय बोर्ड का अध्यक्ष भी उन्हें ही बनाया गया, पार्टी का नाम और निशान तय करने को उन्हें ही अधिकृत कर दिया गया, कमिटी बनाने की जिम्मेवारी भी उन्हें ही सौंप दी गई.

सरोज सिंह

भारत की आज की राजनीति दो ध्रुवीय हो गई है. हालांकि हिन्दी पट्टी के कुछ राज्यों सहित देश के कुछ अन्य क्षेत्रों में अब भी राजनीति के इस चक्र को पूरा होना है. पर ऐसी राजनीति कमोवेस हर जगह है, कहीं पूरे शबाब में, तो कहीं प्रयोग की स्थिति में. दक्षिण भारत के दो राज्यों तमिलनाडु और केरल में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था दशकों से चल रही है. पार्टियां अपनी राजनीति के अनुरूप राजनीतिक ध्रुव में शामिल हो रही हैं. महाराष्ट्र में भी ऐसी व्यवस्था बनी है. हालांकि दक्षिण के उक्त राज्यों की तरह यह सुगठित तो नहीं है, पर है. यहां एनडीए के समानांतर कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए है. कर्नाटक, आंध्र प्रदेश आदि राज्यों में भी ऐसी कोशिश हो रही है. पश्चिम बंगाल में एक ध्रुव- वाम मोर्चा तो है, पर इसके प्रतिरोध में कोई मोर्चा नहीं बन पा रहा है. शायद यह स्थिति वाम मोर्चा के निरंतर कमजोर होते जाने के कारण है. हिन्दी पट्टी में ऐसे स्पष्ट राजनीतिक ध्रुवीकरण का अभाव ज्यादा महसूस किया जा रहा है. राजस्थान व मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में मुख्यतः दो ही पार्टियां मैदान में दिखती हैं. हरियाणा में भी ऐसी ही स्थिति बनती जा रही है. पर, बिहार में ऐसा ध्रुवीकरण राजनीतिक प्रक्रिया में है और अब तक यह सही दिशा में बढ़ता दिख रहा है. यहां एनडीए के समानांतर तीन दलों का महागठबंधन केवल आकार ही नहीं लिया है, सरकार भी चला रहा है. अब इसकी जरूरत उत्तर प्रदेश में भी महसूस की जा रही है. वस्तुतः राजनीति बदल रही है और भाजपा के नेतृत्व वाले एनडीए के समानान्तर किसी ठोस राजनीतिक ध्रुव की जरूरत हिन्दी पट्टी में अधिक शिद्दत से महसूस की जा रही है. इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि मुलायम सिंह यादव जैसे दबंग और बुजुर्ग नेता भी इसे महसूस कर रहे हैं. मुलायम की राजनीतिक पारी देश के अनेक बड़े नेताओं की उम्र से भी बड़ी है और उन्हें उत्तर प्रदेश के बड़े सामाजिक समूहों का अखंड समर्थन मिलता रहा है. इसी समर्थन के बूते उन्होंने सपा जैसी पार्टी खड़ी की जो पिछले ढाई दशक से उत्तर प्रदेश की सत्ता का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है- पक्ष हो या विपक्ष. अब उसी मुलायम सिंह यादव ने जनता परिवार के दलों को एकजुट करने और गैर भाजपाई दलों का फ्रंट तैयार करने की कोशिश शुरू की है. समाजवादी पार्टी की स्थापना के रजत जयंती समारोह को उन्होंने इसका मंच बनाने का प्रयास किया. इस समारोह में तत्कालीन जनता दल कुल के सभी दलों के नेताओं को बुलाया गया. हालांकि इस कुल के कई नेता समारोह में शामिल नहीं हुए, पर वे भी राष्ट्रीय स्तर पर गैर भाजपाई फ्रंट की जरूरत को शिद्दत से महसूस करते हैं और इसे सार्वजनिक तौर पर स्वीकार भी करते हैं. बिहार विधानसभा चुनाव में इसी राजनीतिक जरूरत के तहत बने महागठबंधन की जीत और भाजपा की करारी शिकस्त के बाद इस दिशा में इन दलों की सक्रियता बढ़ी भी है. हालांकि इन दलों की यह सक्रियता कई अगर-मगर से बंधी हुई है, पर गैर भाजपा और गैर कांग्रेसी खेमा का कोई भी नेता इसकी जरूरत से इंकार नहीं कर रहा है. कम से कम सार्वजनिक तौर पर तो नहीं ही.

भाजपा विरोधी मोर्चे की जरुरत बिहार के नेताओं- नीतीश कुमार और लालू प्रसाद ने सवा दो साल पहले महसूस की थी. इसी जरूरत को पूरा करने के ख्याल से इस राज्य में जद(यू), राजद और कांग्रेस- अपनी अनेक राजनीतिक मतभेदों और दूरी के बावजूद- एक साथ आए. विधानसभा उपचुनावों में गठबंधन बनाया और भाजपा के नेतृत्व में एनडीए को कड़ी शिकस्त दी. उस समय विधानसभा की चौदह सीटों पर उपचुनाव हुए थे और इसमें भाजपा अपनी सीटों को भी नहीं बचा सकी. इस प्रयोग की सफलता ने राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे भाजपा विरोधी मोर्चे को हालात की जरुरत साबित कर दिया. बिहारी राजनीति में इसी तालमेल ने महागठबंधन को ठोस बुनियाद दी. 2014 के संसदीय चुनावों में नरेन्द्र मोदी के नाम पर गैर एनडीए दलों की पराजय ने बिहार के नेताओं- राजद सुप्रीमो लालू प्रसाद और जद(यू) में तब भी सुप्रीमो की हैसियत प्राप्त नीतीश कुमार को एकजुट होने की सबसे बड़ी राजनीतिक सीख दी थी. इन्होंने इसे समझा और एकजुट होने का तय किया. अल्पसंख्यक वोट बंटे नहीं, इसलिए कांग्रेस को भी साथ लिया गया. इस प्रयोग की सफलता ने सूबे की भाजपा विरोधी राजनीति को आगे के रास्ते दिखाये और भाजपा विरोधी दलों के नेताओं ने इसे आगे चलाने का फैसला लिया. यही प्रयोग आगे चला और बिहार विधानसभा चुनावों में इस महागठबंधन की ऐतिहासिक जीत ने भाजपा और उसके नेतृत्व के एनडीए को करारी शिकस्त दी. बिहार विधानसभा चुनावों की इस हार से मिली पस्तहिम्मति से

सभी फोटो- प्रभात पाण्डेय

भाजपा विरोधी मोर्चे की जरुरत बिहार के नेताओं- नीतीश कुमार और लालू प्रसाद ने सवा दो साल पहले महसूस की थी. इसी जरूरत को पूरा करने के ख्याल से इस राज्य में जद(यू), राजद और कांग्रेस- अपनी अनेक राजनीतिक मतभेदों और दूरी के बावजूद- एक साथ आए. विधानसभा उपचुनावों में गठबंधन बनाया और भाजपा के नेतृत्व में एनडीए को कड़ी शिकस्त दी. उस समय विधानसभा की चौदह सीटों पर उपचुनाव हुए थे और इसमें भाजपा अपनी सीटों को भी नहीं बचा सकी. इस प्रयोग की सफलता ने राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे भाजपा विरोधी मोर्चे को हालात की जरुरत साबित कर दिया.

भाजपा अब तक उबर नहीं सकी है. पटना से लेकर दिल्ली तक का इसका नेतृत्व अभी तक बिहार चुनाव की हार मन से स्वीकार नहीं कर सका है. यह पस्तहिम्मति भाजपा में सभी स्तर पर देखी जा सकती है.

बिहार के उपचुनावों में महागठबंधन की जीत ने नीतीश कुमार - लालू प्रसाद को जनता परिवार के दलों को एक छतरी में लाने की प्रेरणा दी, क्योंकि कांग्रेस के साथ ऐसा गठबंधन देश के सभी राज्यों, खास कर हिन्दी पट्टी, में असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर है. सो, जनता परिवार के दलों को एक छतरी के नीचे लाने या उनके विलय की पहल बिहार उपचुनाव के कुछ महीनों बाद आरंभ हुई. सपा सुप्रीमो मुलायम सिंह यादव ने इस पहल पर हामी भरी. तय हुआ कि नई पार्टी और नए निशान पर ही बिहार चुनाव लड़े जाएंगे. विचार-विमर्श की लंबी प्रक्रिया के बाद सब कुछ तय हो गया- प्रस्तावित दल का अध्यक्ष मुलायम सिंह को घोषित किया गया, ससंदीय बोर्ड का अध्यक्ष भी उन्हें ही बनाया गया, पार्टी का नाम और निशान तय करने को उन्हें ही अधिकृत कर दिया गया, कमिटी बनाने की जिम्मेवारी भी उन्हें ही सौंप दी गई. पर विलय की प्रक्रिया निरन्तर लंबी खिंचती जा रही थी. ऐसी हालत में तय किया गया कि बिहार में फिलहाल महागठबंधन बना कर चुनाव लड़ा जाए. बिहार में चुनाव का माहौल गरमा रहा था और दिल्ली से लेकर लखनऊ तक खेल चल रहा था. अंत में यह हुआ कि मुलायम सिंह यादव और उनकी सपा इस अभियान से अलग हो गई. सपा की ओर से उसके महासचिव रामगोपाल यादव ने कहा- हम डेथ-वारंट पर दस्तखत नहीं कर सकते, हम किसी के साथ विलय नहीं करेंगे. इसके साथ ही सपा नेताओं ने बिहार चुनाव में अपनी पार्टी को इस महागठबंधन से भी अलग कर लिया. यह बात सपा के नेताओं ने तब कही जब बिहार में सीटों का बंटवारा चल रहा था. सीटों के बंटवारे पर सपा को एतराज था. यहां तक भी चल सकता था. पर मुलायम सिंह यादव की सपा और इसके नेताओं ने और आगे बढ़ कर सूबे में एक नया मोर्चा बनाया. इस मोर्चे की चुनाव में क्या स्थिति रही यह बताने की जरूरत नहीं- इस मोर्चे के सबसे बड़े दल सपा को एक प्रतिशत से भी कम वोट मिले थे. यह आम धारणा बनी कि सपा का फैसला केंद्र में सत्तारूढ़ एनडीए के दबाव में स्वार्थ से प्रेरित था और इसका मकसद महागठबंधन के वोट को बिगाड़ना था. असलियत जो भी हो, पर आज भी लोग उस प्रकरण को इसी तरह याद करते हैं. जद(यू) की राष्ट्रीय परिषद के राजगीर अधिवेशन में नीतीश कुमार ने एक बार फिर इस घटना की याद बिहार के लोगों को दिला दी. इस घटना का उल्लेख कर नीतीश कुमार सपा सुप्रीमो को कुछ याद दिला रहे थे. नीतीश कुमार ने तो यहां तक कह दिया कि मुलायम के परिवार में जो कुछ हो रहा है, वह बिहारियों की आह का असर है.

नीतीश कुमार ने जिस राजनीति को दो-ढाई वर्ष पहले महसूस कर जमीन पर उतारने की पहल की थी और जिसके लिए अपनी विधानसभा व विधान परिषद की सीटों की कुर्बानी दी, उसे मुलायम सिंह यादव अब महसूस और स्वीकार कर रहे हैं. नीतीश कुमार ने भाजपा विरोधी मोर्चा को आकार देने के लिए विधानसभा उपचुनावों के समय अपनी जीती हुई पांच सीटों को छोड़ा था. इसके कुछ महीनों बाद हुए विधान परिषद के स्थानीय निकाय क्षेत्र की सीटों को भी अपने मित्र दल के लिए छोड़ दी थी. विधानसभा चुनावों में तो जद(यू) ने बड़ी कुर्बानी दी. पिछली विधानसभा में उसके 119 सीटें थीं. पर, गठबंधन को बनाए रखने के लिए नीतीश कुमार ने 19 सीटों से अपना दावा छोड़ दिया. इतना ही नहीं कोई एक दर्जन उन सीटों को भी उन्होंने सहयोगी दलों के लिए त्याग दिया जिन पर उनके विधायक थे. पिछली विधानसभा में राजद के मात्र चौबीस सदस्य थे. इसके बावजूद चुनावों में उसके खाते में एक सौ से अधिक सीटें गईं. कांग्रेस के पांच विधायक थे, लेकिन उसको चालीस सीटें दी गई. बिहार विधानसभा में महागठबंधन को एकजुट और मजबूत बनाए रखने के लिए नीतीश कुमार ने वह सब कुछ किया, जो किया जा सकता था. ऐसा इसलिए कि वह भाजपा को बिहार के मैदानों में पराजित करना सबसे बड़ी राजनीतिक जरूरत मानते थे. इसके बरअक्स मुलायम सिंह यादव की मौजूदा पहल अब भी साफ नहीं है. उन्होंने गठबंधन की जरुरत को तब स्वीकार किया है, जब उनकी सपा और खुद का घर विभाजित है. उत्तर प्रदेश के राजनीतिक हालात तो पहले से ही सपा के बहुत अनुकूल नहीं थे, अब मुलायम के घर में ही विरासत पर वर्चस्व की जंग के सड़कों पर आ जाने से उनकी छह दशक से भी पुरानी राजनीति की किरकिरी हुई है. अब अपने पिछड़ा आधार को बचाना उनकी सबसे बड़ी जरूरत है. इस आधार में कोई सेंध न लगे और इस कारण अल्पसंख्यक मतदाता समूह उनके साथ जुड़े, यह उनकी फौरी मजबूरी है. कई बड़े राजनेता मानते हैं कि ये जरूरतें उन्हें गठबंधन को प्रेरित कर रही है. पर, ऐसा कोई गठबंधन होने की सूरत में अपने सहयोगियों को देने के लिए मुलायम के पास बहुत कुछ नहीं बचा है. अधिकांश सीटों पर सपा के प्रत्याशी पहले से घोषित हैं.

मुलायम सिंह यादव की इस पहल में एक और पेंच है. नीतीश कुमार के जद(यू) ने इसी पेंच को मुलायम सिंह के न्योता को न मानने का आधार बनाया है. जद(यू) का मानना है कि सपा के भीतर जो घमासान है, उसमें रैली में भाग लेने से गलत संदेश जाएगा. इस रजत जयंती समारोह का आयोजन मुलायम सिंह यादव ने किया है, जिनके साथ अखिलेश यादव नहीं हैं. हम इस गुटबंदी का हिस्सा नहीं बनना चाहते. सपा के घर की आग में कोई अपना हाथ क्यों जलाए! सपा सीधे-सीधे चाचा-भतीजा के बीच बंट गई है. चाचा शिवपाल यादव को नेताजी का साथ है, तो भतीजा अखिलेश यादव के साथ अपनी छवि के साथ-साथ सूबे के युवा का बड़ा तबका. हालांकि अभी वहां माहौल को सहज बनाने की कोशिश सपा सुप्रीमो खुद ही कर रहे हैं. इतना तो साफ है कि सपा में अखिलेश की राह आसान नहीं है, लेकिन नेताजी की भी अब वह हैसियत नहीं रही, जो कुछ वर्ष पहले हुआ करती थी. सपा के किसी गुट के किसी आयोजन में जाने का मतलब उसका समर्थन है. जद(यू) फिलहाल इसके लिए तैयार नहीं है. यह इसलिए भी कि पिछले आठ-नौ महीनों के अभियान के बाद, दल का मानना है, उत्तर प्रदेश में नीतीश कुमार ने जद(यू) के लिए जमीन तैयार की है. उनके लोग उत्तर प्रदेश में जी तोड़ मेहनत कर रहे हैं और नीतीश कुमार के शराबबंदी व महिला सशक्तीकरण तथा महादलित सशक्तीकरण के अनेक कार्यक्रमों को लेकर चुनावी अभियान का आधार तैयार कर रहे हैं. हालांकि अखिलेश यादव को लेकर नीतीश कुमार अपने सकारात्मक रुख को बार-बार अभिव्यक्त कर चुके हैं. सपा और उत्तर प्रदेश में आनेवाले समय में अखिलेश यादव की वक़त निर्विवाद बढ़ेगी. सो, उगते सूर्य की उपेक्षा कोई कैसे कर सकता है! ■

ईम्पोर्टेड केमिकल से तैयार, लैब टेस्टेड

पेन्ट डिस्टेम्पर
कोई भी हो
वॉल पुट्टी केवल ईटालियन वॉल पुट्टी

Laboratory Tested
Please Compare Lab Report
Laboratory Tested

Made from Imported Chemicals
ईटालियन
व्हाईट
वॉल पुट्टी
Slight Costly but Superior

लैब रिपोर्ट अवश्य चेक करें ।
लैब रिपोर्ट हमारे सभी डीलर्स के यहां उपलब्ध है

प्रखण्ड स्तर या अपने क्षेत्र हेतू सप्लायर / डीलरशिप के लिए सम्पर्क करें ।
Mob : 9431234022 / 9435040133 Mail ID : mcwaterproof@yahoo.com

सीमेन्ट की ताकत बढ़ाए, घर को मजबुत बनाऐ

सीमेन्ट
कोई भी हो परन्तु
वाटरप्रूफिंग केमिकल सिर्फ

मिस्टर केमिस्ट

सीमेन्ट कोई भी हो लेकिन वाटरप्रूफिंग केमिकल मिस्टर केमिस्ट ही हो, क्योंकि मिस्टर केमिस्ट वाटरप्रूफिंग केमिकल ईम्पोर्टेड केमिकल से बनाया गया है, प्रत्येक पैक पर नम्बर युक्त होलोग्राम से नकल से पूरी तरह सुरक्षित १, ५, १०, २० एवं २०० लीटर होलोग्रामिक पैक में अब आपके यहां भी उपलब्ध । मिस्टर केमिस्ट वाटरप्रूफिंग सीमेन्ट की ताकत बढ़ाए, घर को मजबुत बनाए ।
Mob : 9431234022 / 9435040133 Mail ID : mcwaterproof@yahoo.com

निश्चय यात्रा से नीतीश देंगे करारा जवाब

नीतीश कुमार की सत्ता की राजनीति का एक खास पक्ष भी यही रहा है कि वह समय-समय पर सीधे जनता से संवाद करने निकल पड़ते हैं. यही कारण है कि पिछले ग्यारह वर्षों के अपने कार्यकाल में अब तक उन्होंने 9 यात्राएं की हैं. इन यात्राओं के दौरान वह अमूमन आठ से दस दिनों तक राजधानी से बाहर होते हैं. नीतीश की नजर में उनकी यात्रायें कितनी महत्वपूर्ण हैं, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि वह यह कई बार कहते सुने गये हैं कि उन्होंने अनेक योजनाओं को सीधे जनता से संवाद कायम कर और उनकी शिकायतों के आधार पर लागू की हैं. इस प्रकार नीतीश कुमार की निश्चय यात्रा उनकी पहले की यात्राओं का विस्तार ही है. नीतीश कुमार की इस यात्रा की खास बात यह भी है कि इस यात्रा की समाप्ति तब होगी, जब उनकी सरकार एक साल का कार्यकाल पूरा कर चुकी होगी.

नीतीश की यात्राएं

न्याययात्रा	12 जुलाई, 2005
विकास यात्रा	9 जनवरी, 2009
धन्यवाद यात्रा	17 जून, 2009
प्रवास यात्रा	25 दिसंबर, 2009
विश्वास यात्रा	28 अप्रैल, 2010
सेवा यात्रा	09 नवंबर, 2011
अधिकार यात्रा	19 सितंबर, 2012
संकल्प यात्रा	05 मार्च, 2014
संपर्क यात्रा	13 नवंबर, 2014

इर्शादुल हक

बिहार में मीडिया का एक धड़ा अक्सर यह पूर्वानुमान लगाता रहता है कि लालू-नीतीश गठबंधन कभी भी दरक सकता है. पिछले ग्यारह महीने में ऐसे कई अवसर आए, जब सोशल मीडिया में भी ऐसे शिगूफे छोड़े गए, लेकिन हर बार ये पूर्वानुमान निराधार साबित होते रहे हैं. विपक्ष के नेता सुशील कुमार मोदी भी गाहे-बगाहे ऐसे बयान देते रहे हैं और उनके इस बयान को आधार बना कर कई बार खबरें चलाई जाती रही हैं, जिसे पढ़ने-सुनने से महागठबंधन के हामियों में संशय का वातावरण बन जाता है. पिछले दिनों जब शहाबुद्दीन प्रकरण जोर-शोर से मीडिया में छाया था, तब भी यह आवाज उठी कि लालू प्रसाद और नीतीश कुमार के बीच काफी दूरियां बढ़ चुकी हैं. राजनीति और मीडिया के गलियारे में भी यह चर्चा चलती रही कि लालू और नीतीश के बीच संवाद की खाई बढ़ती जा रही है. इन तमाम अटकलबाजियों पर तब विराम लग गया, जब दिवाली की पूर्वसंध्या पर गठबंधन के तीनों दलों के वरिष्ठतम नेता मुख्यमंत्री आवास पर रात्रि भोज के लिए मिले. इस बैठक में राजद प्रमुख लालू प्रसाद, जदयू अध्यक्ष व मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष व शिक्षा मंत्री अशोक चौधरी के अलावा तीनों दलों के अन्य वरिष्ठ नेता शामिल हुए. इस बैठक की सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि गठबंधन के तीनों घटक दलों ने एक स्वर में यह फैसला किया कि अब सभी दलों की महीने में एक बार संयुक्त बैठक होगी. इतना ही नहीं, यह भी तय किया गया कि समय-समय पर सरकार और गठबंधन दलों के बारे में पैदा की जाने वाली अटकलबाजियों और इससे उत्पन्न संशय को दूर करने के लिए भी पुख्ता कदम उठाए जाएंगे. गठबंधन ने यह भी तय किया कि एक बीस सूत्री कमेटी बनायी जाए, जो सरकार व दलों के बीच सामंजस्य बनाते हुए विकास कार्यों की समीक्षा करे. यह गौर करने की बात है कि तीनों दलों की यह बैठक तब हुई है, जब शहाबुद्दीन प्रकरण के अलावा राजद से निलंबित विधायक राजबल्लभ यादव व जदयू से निलंबित विधायिका मनोरमा देवी के बेटे रॉकी यादव से जुड़े विवादों के कारण गठबंधन के अंदर, विरोधी दल के नेता, खींचतान के हालात देख रहे थे. यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि राजीव रौशन हत्या मामले में शहाबुद्दीन को मिली जमानत को सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया था, जबकि जद यू की निलंबित विधायिका मनोरमा देवी के बेटे रॉकी यादव, जिन पर एक युवक की हत्या का आरोप है, की जमानत को भी सुप्रीम कोर्ट ने रद्द कर दिया था. इसी तरह राजद से निलंबित विधायक राजबल्लभ यादव, जिन पर एक नाबालिग लड़की के बलात्कार का आरोप है, को भी हाईकोर्ट ने जमानत दे दी थी और उसके कुछ ही दिनों बाद राजबल्लभ की एक तस्वीर सोशल मीडिया पर वायरल हो गयी थी जिसमें वह लालू प्रसाद के आधिकारिक आवास से बाहर आते देखे गये थे. बताया जाता है कि राजबल्लभ ने लालू प्रसाद से मुलाकात की थी. ये तीनों मामले गठबंधन सरकार पर विरोधी दलों द्वारा जोरदार हमले का कारण बने. इतना ही नहीं, इन तीनों विवादों के बाद राजनीति और मीडिया के गलियारे में समानांतर रूप से यह चर्चा जोरों पर होने लगी थी कि इन मामलों के कारण लालू और नीतीश के बीच खाई बढ़ गई है. उधर तभी कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष व शिक्षा मंत्री अशोक चौधरी के एक बयान ने इन कयासों को और मजबूत कर दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि गठबंधन में रहने या न रहने की आजादी हर दल को है और अगर कोई गठबंधन से बाहर जाना चाहता है, तो जा सकता है. चौधरी का यह बयान लालू प्रसाद को टारगेट कर दिया गया था. दरअसल यह विवाद तब शुरू हुआ था, जब जेल से बाहर आने के बाद शहाबुद्दीन ने नीतीश कुमार को 'परिस्थितियों का मुख्यमंत्री' बताया था और उसके ठीक बाद राजद के वरिष्ठ नेता रघुवंश प्रसाद सिंह ने भी इस बात को दोहराया था. शहाबुद्दीन और रघुवंश प्रसाद सिंह के इस बयान पर जद यू के आधिकारिक प्रवक्ताओं ने भी परोक्ष रूप से अपनी नाराजगी जाहिर की थी. इस घटनाक्रम के बाद यह चर्चा जोर पकड़ने लगी थी कि गठबंधन के अंदर हालात ठीक नहीं हैं.

हालांकि गठबंधन सरकार पर पैनी नजर रखने वाले विश्लेषकों ने तब भी यह नहीं माना था कि ऐसे विवादों से गठबंधन सरकार की सेहत पर कोई असर पड़ने वाला है. पर अब जब दिवाली की पूर्व संध्या पर लालू-नीतीश-अशोक रात्रि भोज पर मिले, तो ऐसे विवादों पर न सिर्फ विराम लग गया है, बल्कि गठबंधन के अंदर अब कोई बड़ी अड़चन भी नहीं है. यही कारण है कि अब तीनों दल सरकार की एक साल की उपलब्धियों का जायजा लेंगे. वे जनता से रूबरू होंगे और उससे मिले फीडबैक के आधार पर विकास के कार्यों को नयी दिशा भी देंगे.

राजीव रौशन हत्या मामले में शहाबुद्दीन को मिली जमानत को सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया था, जबकि जद यू की निलंबित विधायिका मनोरमा देवी के बेटे रॉकी यादव, जिन पर एक युवक की हत्या का आरोप है, की जमानत को भी सुप्रीम कोर्ट ने रद्द कर दिया था. इसी तरह राजद से निलंबित विधायक राजबल्लभ यादव, जिन पर एक नाबालिग लड़की के बलात्कार का आरोप है, को भी हाईकोर्ट ने जमानत दे दी थी और उसके कुछ ही दिनों बाद राजबल्लभ की एक तस्वीर सोशल मीडिया पर वायरल हो गयी थी जिसमें वह लालू प्रसाद के आधिकारिक आवास से बाहर आते देखे गये थे. बताया जाता है कि राजबल्लभ ने लालू प्रसाद से मुलाकात की थी. ये तीनों मामले गठबंधन सरकार पर विरोधी दलों द्वारा जोरदार हमले का कारण बने.

दरअसल जनता से रूबरू होने और फीडबैक लेने की ये तैयारियां इसलिए भी अहम हैं कि नवम्बर के आखिरी सप्ताह में नीतीश सरकार अपने एक साल का कार्यकाल पूरा कर रही है. इसी बात को ध्यान में रख कर नीतीश कुमार ने 'निश्चय यात्रा' की घोषणा भी कर दी है. पिछले दिनों नीतीश ने इस यात्रा की सार्वजनिक घोषणा करते हुए मुख्य सचिव अंजनी कुमार सिंह को इस यात्रा की रूप रेखा तैयार करने को कहा. नीतीश अपनी निश्चय यात्रा की शुरुआत 9 नवम्बर से करने वाले हैं. इस यात्रा के दौरान वह राज्य के ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों को कवर करेंगे. इस दौरान वह पिछले एक वर्ष में किये गये कामों और उपलब्धियों पर लोगों का फीडबैक लेंगे और उसी अनुरूप आगामी योजनाओं को आगे बढ़ाने की कोशिश करेंगे. नीतीश की यह यात्रा इसलिए भी महत्वपूर्ण मानी जा रही है क्योंकि नयी सरकार के गठन के बाद उन्होंने अपने दो महत्वपूर्ण वादों पर अमल शुरू कर दिया है. इनमें से एक उनके वे सात निश्चय (हर घर नल का पानी, शिक्षा व रोजगार ऋण, नाला व सड़क निर्माण आदि) हैं, जिनका ऐलान उन्होंने चुनावी घोषणा पत्र में कर रखा था. जबकि दूसरा और चर्चित फैसला शराबबंदी के कानून को लेकर है, जिसे नीतीश एक नये सामाजिक क्रांति के रूप में देखते हैं. बिहार में पिछले छह महीने से शराबबंदी लागू है. शराबबंदी का नया कानून नीतीश सरकार का सबसे ज्यादा चर्चित और विवादित फैसला रहा है. इस मुद्दे ने पक्ष-विपक्ष के आरोप-प्रत्यारोप के अलावा अदालती हस्तक्षेप के कारण भी खूब सुर्खियां बटोरीं. ऐसे में माना जा रहा है कि नीतीश कुमार अपनी निश्चय यात्रा के दौरान शराबबंदी के फैसले के असर को समझने की कोशिश करेंगे.

वैसे नीतीश कुमार की सत्ता की राजनीति का एक खास पक्ष भी यही रहा है कि वह समय-समय पर सीधे जनता से संवाद करने निकल पड़ते हैं. यही कारण है कि पिछले ग्यारह वर्षों के अपने कार्यकाल में अब तक उन्होंने 9 यात्राएं की हैं. इन यात्राओं के दौरान वह अमूमन आठ से दस दिनों तक राजधानी से बाहर होते हैं. नीतीश की नजर में उनकी यात्रायें कितनी महत्वपूर्ण हैं, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि वह यह कई बार कहते सुने गये हैं कि उन्होंने अनेक योजनाओं को सीधे जनता से संवाद कायम कर और उनकी शिकायतों के आधार पर लागू की हैं. इस प्रकार नीतीश कुमार की निश्चय यात्रा उनकी पहले की यात्राओं का विस्तार ही है. नीतीश कुमार की इस यात्रा की खास बात यह भी है कि इस यात्रा की समाप्ति तब होगी, जब उनकी सरकार एक साल का कार्यकाल पूरा कर चुकी होगी. स्वाभाविक तौर पर यह उम्मीद की जा रही है कि एक साल का कार्यकाल पूरा होने के बाद सरकार एक भव्य कार्यक्रम का आयोजन करेगी और तब नीतीश अपनी यात्रा की उपलब्धियों को जन-जन तक पहुंचायेंगे. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि दिवाली की पूर्व संध्या पर गठबंधन के तीनों घटक दलों के नेताओं ने आपस में मिल-बैठ कर इस धारणा को मजबूत करने की कोशिश की है कि सरकार के अंदर कोई खटपट नहीं है. इस बैठक के द्वारा यह भी मैसेज देने की कोशिश की गई है कि सरकार अपने एक साल के कार्यों को मजबूती से जनता के बीच प्रचारित व प्रसारित कर जनता में उपजने वाले भ्रम को दूर करे.

ऐसा नहीं है कि इस काम की जिम्मेदारी अकेले नीतीश कुमार ने अपने सर पर ले रखी है. कुछ इसी तरह के काम राजद और कांग्रेस जैसे घटक दल भी अपने स्तर पर करने में लगे हैं. राजद नेता व उपमुख्यमंत्री तेजस्वी यादव और कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष व शिक्षा मंत्री अशोक चौधरी भी अपने-अपने स्तर पर इस काम में लगे हैं. तेजस्वी यादव पिछले कुछ दिनों में राज्य के पूर्वी और सीमांचल क्षेत्रों के दौरे कर सरकार की उपलब्धियों को जन-जन तक पहुंचाने में लगे हैं. तेजस्वी ने जनसंवाद कार्यक्रम के तहत हाल में सहरसा में कुछ ऐसा ही किया है, जबकि अशोक चौधरी का पटना के अलावा दूसरे शहरों में आयोजित कार्यक्रम इसी रणनीति का हिस्सा है. ■

feedback@chauthiduniya.com

टी.बी./क्षय रोग है घातक
सेहतनामा
ariskon Pharma Pvt.Ltd.
An ISO 9001 : 2008 Certified Co.

गया के फतेहपुर,प्रखंड में कार्यरत डॉ. अशोक कुमार सिंह ने वर्तमान में टी.बी. के मरीजों के घटने को एक सुकून बताते हुए कहा कि सरकार के प्रयासों का नतीजा है कि आज इस बीमारी में काफी कमी आयी है फिर भी इस के बारे में सचेत रहने की जरूरत है। उन्होंने बताया कि पहले आप इन मुख्य बिन्दुओं पर अवश्य गौर करें • टयूबरकुलोसिस बैक्टीरिया के संक्रमण से होता है । • शरूआत में रोगी को कंधे व पसलियों में दर्द की शिकायत रहना। • वजन का घटना, भूख ना लगना • एच.आई.वी ग्रसित और ड्रग्स लेने वाले जरूर इसका टेस्ट करायें। दो हफ्ते से ज्यादा खांसी होना, तेज बुखार आना ये तो क्षय रोग के लक्षण हैं, लेकिन इनके आलावा भी कई ऐसे लक्षण हैं जिनसे टी.बी की पहचान की जाती है। टी.बी माइक्रोबैक्टेरियम टूबरकुलोसिस नामक बैक्टेरिया से होने वाला एक संक्रमण है। किसी भी क्षय रोगी के संपर्क में आने से इस रोग के होने का खतरा रहता है। अस्वस्थ जीवनशैली और अनुचित खान-पान भी इसकी एक बड़ी वजह है। लक्षण: क्षय रोग की शुरूआत में आप थोड़ा सा काम करने पर थक जाते हैं आपको कमजोरी महसूस होने लगती है। कई बार लोग इस लक्षण को गंभीरता से नहीं लेते हैं और धीरे-धीरे आपके शरीर पर टी.बी के बैकटेरिया आक्रमण करना शुरू कर देते हैं। बुखार आना, सर्दी जुकाम होना यह तपेदिक होने की शरूआत भी हो सकते हैं। कई बार यह अपने आप ठीक भी हो जाता है लेकिन कभी-कभी यह वापस भी आ जाता है। ऐसे में बिना देर किए तुरंत क्षय रोग का टेस्ट कराएं।

इसमें ठंड का मौसम हो या गर्मियों का रात को पसीना आने लगता और रोगी का मुंह सूखने लगता है। वजन में तेजी से कमी आना, भूख नहीं लगना भी इसके लक्षण माने गये हैं।

इन्हें गंभीरता से लें। क्षय रोग से पीड़ित रोगी को कभी-कभी थूक के साथ खून भी आने लगता है। इसलिए यह लक्षण दिखते ही बिना देर किए डॉक्टर से संपर्क करें। अगर आपको कफ है और सांस लेने में समस्या हो रही है तो इससे गंभीरता से लें तुरंत टेस्ट कराएं। अगर आपके आसपास में कोई क्षयरोगी है, तो एक बार अपना टी.बी का टेस्ट जरूर करवा लें, क्योंकि क्षय रोग एक संक्रामक रोग है और रोगियों के साथ समय बिताने पर यह आसानी से फैलता है। अगर आप एचआईवी से ग्रसित हैं तो टी.बी होने का खतरा बढ़ जाता है इसलिए टी.बी की जांच जरूर कराएं। अगर आपका ऐसी जगहों पर आना जाना हो जहां टी.बी के मरीज हों तो अपनी जांच जांच कराएं। अगर आप नशीली दवाओं का सेवन कर रहें हैं या ड्रग्स ले रहे हैं तो क्षय रोग होने की संभावना हो सकती है। ऐसे में जांच कराना जरूरी है। ▪ भारती

डॉ. अशोक कुमार सिंह
जेनरल फिजिशयन,फतेहपुर,गया
गौतम क्लीनिक, थाना रोड, फतेहपुर

Carbo - XT Drops Susp.
Ferrous Ascorbate100 mg + Folic Acid 1.5 mg + Vitamine B5 mcg Tab.

A Colic Drops.
Simethocone Emulsion, Dil Oil Fennel Oil

Siliplex Syp.
Silymarin, vitamin B Complex Calcuium & Lactic Acid Bacillus

Oflogyl-OZ Susp. (60 ml)
Ofloxacine 100 mg & Omindazole 125 mg

Acoba Syp.
Methylocobalamine, Lycopene, Multivitamine Multimineral & Antioxident

NOKSIRA Pharma Pvt.Ltd.
A Division of AriskonPharma

न्याय का हाल : 58 एडजॉर्नमेंट, 104 नोटिफिकेशन, फ़ैसला शून्य

वे गुल खिलाते रहे हम बिगुल फूंकते रह गए

प्रभात रंजन दीन

उत्तर प्रदेश के ऊर्जा सेक्टर में भ्रष्टाचार के खिलाफ अभियान चलाने वाले व्हिसिल ब्लोअर नंदलाल जायसवाल की मुश्किलें लगातार बढ़ती ही चली जा रही हैं. पूरा तंत्र उनके खिलाफ पड़ा हुआ है. इसमें ऊर्जा सेक्टर से संबद्ध विभाग, उत्तर प्रदेश शासन में शीर्ष पदों पर बैठे कुछ नौकरशाह, नेता और न्यायाधीश तक शामिल हैं. अरबों रुपए के महाघोटाले में तत्कालीन मायावती सरकार द्वारा सीबीआई जांच की औपचारिक मंजूरी के बावजूद जजों ने उस मामले को इतना उलझा दिया कि सीबीआई जांच तो जस की तस लंबित पड़ी रही, उल्टा अदालत ने व्हिसिल ब्लोअर नंदलाल जायवाल के खिलाफ ही अदालत की अवमानना का मामला शुरू कर दिया. जासवाल के खिलाफ अन्य मामले भी पूर्व में लादे गए और उनका मुंह बंद करने का काफी कुचक्र रचा गया. जब उनका अभियान नहीं रुका तो नंदलाल जायसवाल पर फर्जी आरोप मढ कर उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया. बाद में हाईकोर्ट के सख्त आदेश पर नंदलाल जायसवाल को जीवनरक्षा के लिए पेंशन देने की शुरुआत हुई. नंदलाल जायसवाल की नौकरी का मसला आज भी लंबित पड़ा है. कुछ ऐसे जज, जो पूर्व में सरकारी वकील थे और ऊर्जा सेक्टर के कानूनी मामलों में फर्जी बिलों पर भुगतान पाते थे, वे नंदलाल जायसवाल के न्याय के रास्ते में अड़ंगा डाल रहे हैं. हाईकोर्ट का स्पष्ट आदेश है कि अरबों के ऊर्जा घोटाले की लंबित जांच पूरी हो जाने के बाद ही नंदलाल जायसवाल पर लगे कोर्ट की अवमानना के मामले की सुनवाई होगी. लेकिन विडंबना यह है कि हाईकोर्ट के इस आदेश को हाईकोर्ट के ही कुछ जजों ने ताक पर रख दिया है और व्हिसिल ब्लोअर के खिलाफ अदालत की अवमानना का मामला चलाया जा रहा है. अदालत को यह बहुत चुभ रहा है कि ऊर्जा घोटाले की जांच में अड़ंगा डालने वाले जजों पर नंदलाल जायसवाल ने उंगली क्यों उठाई.

अदालतें जजों की कमी और पेंडिंग मामलों के भारी बोझ का रोना रोती हैं, लेकिन एक ही मामले में अदालत का रवैया देख कर आपको लंबित मामलों की असली पटकथा का पता चल जाएगा. व्हिसिल ब्लोअर नंदलाल जायसवाल के खिलाफ चलाया जा रहा एक मामला (2880 एसएस, 2009) आखिरी फैसले के लिए 104 बार सूचीबद्ध (नोटिफाई) हुआ, लेकिन कोई निर्णायक फैसला नहीं आया. अदालत ने इस मामले को 58 बार स्थगित (एडर्जोन) किया. अपना केस खुद लड़ने वाले नंदलाल जायसवाल ने जज से इसका कारण पूछा तो जज ने उनके खिलाफ क्रिमिनल कंटेम्प्ट चलाने और गिरफ्तार कराने की धमकी दी. अदालती कुचक्र का हाल देखिए कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने नंदलाल जायसवाल के मामले में ऑर्डर-शीट तलब कर उसकी समीक्षा करने के बाद फैसले के लिए बाकायदा बेंच गठित कर दी थी. लेकिन मुख्य न्यायाधीश का आदेश टाल कर मामले को दूसरे बेंच में स्थानांतरित कर दिया गया. यह कहने का बहाना मिल गया कि रोस्टर-चेंज होने के कारण दूसरे कोर्ट में मामला स्थानांतरित किया गया.

यह तो केवल एक बानगी है. ऊर्जा सेक्टर के अरबों के घोटाले की जांच कराने और घोटालों पर अंकुश लगाने में कुछ जजों द्वारा नियोजित तरीके से कोताही बरतने के ऐसे दर्जनों मामले सामने हैं. लेकिन इस पर रोकथाम का कोई उपाय नहीं है. व्हिसिल ब्लोअर्स की सुरक्षा और उन्हें कानूनी संरक्षण मुहैया कराने की सुप्रीम कोर्ट की चिंता महज औपचारिकता ही साबित हो रही है. ऊर्जा घोटाले के एक महत्वपूर्ण मामले की फाइल दबाने में एक जज केके शर्मा की संदेहास्पद भूमिका आधिकारिक तौर पर उजागर होने के बाद इलाहाबाद हाईकोर्ट प्रशासन ने थोड़ी सक्रियता दिखाई थी, लेकिन समय के अंतराल में वह भी बेअसर ही साबित हुई. उक्त जज ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर मामले की रिपोर्ट तीन साल तक दबाए रखी थी. जज के खिलाफ यह भी शिकायत थी कि जज बनने के पहले जब वे न्याय विभाग के प्रमुख सचिव थे, तब उन्होंने संवेदनशील तथ्य छुपा कर एक विवादास्पद सरकारी वकील के जज बनने में मदद की थी.

भ्रष्टाचार की रोकथाम के सियासी-प्रशासनिक-न्यायिक घड़ियाली-रुदन के बीच वास्तविक स्थिति यह है कि उत्तर प्रदेश के सरकारी विभाग भ्रष्टाचार का अड्डा बने हुए हैं. ऊर्जा महकमा इसमें अव्वल है. इसके मंत्री खुद मुख्यमंत्री अखिलेश यादव हैं. यूपी पावर कॉरपोरेशन व इससे जुड़े दूसरे निगमों में बीते वर्षों में खरबों रुपये के बड़े-बड़े घोटाले हुए, पर कुछ नहीं हुआ. अखिलेश सरकार के आने के पहले मायावती सरकार के दौरान यूपी पावर कॉरपोरेशन में पांच हज़ार करोड़ रुपये का घोटाला हुआ था. उसके पहले मुलायम सिंह सरकार के दौरान राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना में 1,600 करोड़ रुपए का घोटाला हुआ था. विद्युत नियामक आयोग की शह पर जेपी समूह समेत निजी बिजली घरानों को लाभ पहुंचाने में 30 हज़ार करोड़ रुपए का घोटाला किया गया. इसी तरह राज्य जल विद्युत निगम में 750 करोड़ रुपए का घोटाला किया गया. उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन के मध्यांचल विद्युत वितरण निगम द्वारा तेलंगाना की वैरिगेट प्रोजेक्ट प्राइवेट लिमिटेड नामक फर्जी कंपनी को ठेका देकर हजारों करोड़ का घोटाला किया गया. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा हिमाचल प्रदेश के खोदरी में जल विद्युत गृह बनवाने और उसका मालिकाना हक़ छोड़ने में कम से कम छह हज़ार करोड़ रुपए का घोटाला हुआ. लेकिन इनमें से किसी भी मामले में सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की. घोटाले की जांच कराने के बजाय घोटाला उजागर करने वाले व्हिसिल ब्लोअर नंदलाल जायसवाल के खिलाफ़ ही अदालत की अवमानना का मामला चला दिया गया.

घोटाला करने और उसकी लीपापोती करने में वे सारी राजनीतिक पार्टियां शामिल हैं, जो प्रदेश की सत्ता में रही हैं. इसमें बहुजन समाज पार्टी सरकार और समाजवादी पार्टी सरकार की बराबर की मिलीभगत है. बसपा और सपा, दोनों ही जब-जब सत्ता में आती हैं, एक-दूसरे के घोटाले दबाने का काम करती हैं. विरोध-प्रतिरोध सब दिखावा है. बसपा सरकार के समय 30 हज़ार करोड़ रुपए का बिजली घोटाला हुआ था. उक्त घोटाले के दस्तावेजी प्रमाण लोकायुक्त एनके मेहरोत्रा को दिए गए थे. लोकायुक्त ने उसे संज्ञान में भी लिया, लेकिन सत्ता के प्रभाव में कार्यवाही आगे नहीं बढ़ पाई. उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन ने पांच निजी पावर ट्रेडिंग कंपनियों के साथ द्विपक्षीय समझौता किया था. पावर कॉरपोरेशन ने उक्त कंपनियों से महंगी दर पर पांच हज़ार करोड़ यूनिट बिजली खरीदने का समझौता किया था. उस करार की शर्त थी कि सस्ती बिजली मिलने पर भी

व्हिसिल ब्लोअर नंदलाल जायसवाल

पावर कॉरपोरेशन कहीं और से बिजली नहीं खरीदेगी. इस खरीद से उत्तर प्रदेश को भीषण नुक़सान हुआ. इस तरह की विचित्र खरीद सपा सरकार में भी जारी है. बसपा सरकार से पहले सपा के शासनकाल में राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना में 1,600 करोड़ रुपए का घोटाला हुआ था. उस समय भी केवल जांच ही चली, नतीजा कुछ नहीं निकला. सत्ता पर काबिज होने के बाद समाजवादी पार्टी सरकार के मुख्यमंत्री अखिलेश यादव ने कहा था कि मायावती सरकार 25 हज़ार करोड़ रुपए का घाटा छोड़कर गई है. लेकिन, उन्होंने इस घाटे की वजह जानने या उसकी औपचारिक जांच कराने की ज़रूरत नहीं समझी. यहां तक कि राज्य विद्युत नियामक आयोग के अध्यक्ष राजेश अवस्थी को हाईकोर्ट के आदेश से बर्खास्त होना पड़ा, फिर भी सरकार ने घोटाले को लेकर कोई क़ानूनी कार्रवाई आगे नहीं बढ़ाई. इसी तरह उत्तर प्रदेश जल विद्युत निगम में भी 750 करोड़ रुपए का घोटाला हुआ, लेकिन उसमें लिप्त तत्कालीन सीएमडी आईएएस आलोक टंडन समेत अन्य अधिकारियों एवं अभियंताओं का कुछ नहीं बिगड़ा. सपा के मौजूदा शासनकाल में बिजली के बिलों में फर्जीवाड़ा करके हज़ार करोड़ रुपए का घोटाला किए जाने का मामला भी सामने आया. घोटाले दर घोटाले जारी हैं. नेता दलीय सीमाएं लांघकर कमा रहे हैं और कमवा रहे हैं. ■

लीपापोती में जज भी थे हमाम में

ऐसे तमाम जज हैं, जिन्होंने ऊर्जा घोटाले की लीपापोती में संदेहास्पद भूमिका अदा की है. विदेशी कंपनी के साथ मिलीभगत कर उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड द्वारा पांच हजार करोड़ रुपए का घोटाला किए जाने के मामले में सीबीआई से जांच कराने की सरकारी अधिसूचना जारी हो जाने के बाद भी सीबीआई से जांच नहीं करने दी गई. इस षड्यंत्र में सीबीआई के अधिकारी भी शरीक रहे. पावर कॉरपोरेशन की विजिलेंस शाखा ने घोटाले की सीबीआई जांच की सिफारिश की और स्टेट विजिलेंस ने भी कहा कि पूरा प्रकरण गंभीर जांच की अपेक्षा करता है, लेकिन इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ बेंच के तत्कालीन जज स्वनामधन्य जगदीश भल्ला और कमल किशोर ने विजिलेंस की सिफारिश को तकनीकी पड़ताल के लिए उन्हीं लोगों के सुपुर्द कर दिया जो अरबों के घोटाले में लिप्त थे. हाईकोर्ट के तत्कालीन जज एसएचए रजा और आरडी शुक्ला की बेंच ने सीबीआई जांच के अपने ही पूर्व के फैसले के ऑपरेटिव पोर्शन को बदल डाला. जज डीके त्रिवेदी और नसीमुद्दीन की बेंच ने कानूनी पेच-लेखम में उलझा कर मामले को आगे बढ़ने नहीं दिया. जज वीरेंद्र शरण व आरडी शुक्ला की बेंच ने एसएचए रजा वाली बेंच के विरोधाभासी फैसले को ही पकड़े रखा और जज रितुराज अवस्थी और अनिल कुमार शिकायतकर्ता का पक्ष सुने बगैर तारीख पर तारीख देते रहे. इन सारे जजों की संदेहास्पद भूमिका के बारे में राष्ट्रपति और सुप्रीम कोर्ट को जानकारी दी जाती रही, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई. इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ बेंच के जज रहे इम्तियाज मुर्तजा और विनय कुमार माथुर ने तो हद ही कर दी. उन्होंने याचिकाकर्ता नंदलाल जायसवाल को अंधेरे में रख कर उनकी जनहित याचिका खारिज कर दी. जबकि इलाहाबाद हाईकोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश शिवकीर्ति सिंह और जज श्रीनारायण शुक्ला की बेंच ने याचिकाकर्ता को शपथपत्र दाखिल करने का आदेश दे रखा था. शपथ पत्र दाखिल करने के बाद नंदलाल जायसवाल सुनवाई की तारीख का इंतजार ही करते रह गए और उधर उनकी याचिका खारिज कर दी गई. जज इम्तियाज मुर्तजा और विनय माथुर के बेजा फैसले की शिकायत पर वह जनहित याचिका फिर से री-स्टोर हुई. हाईकोर्ट प्रशासन द्वारा उस जनहित याचिका को वापस कानूनी प्रक्रिया में लाने का निर्णय उन जजों और मौजूदा न्यायिक व्यवस्था पर करारे तमाचे की तरह साबित हुआ. लीपापोती करने-कराने के मामले में न केवल हाईकोर्ट बल्कि सुप्रीम कोर्ट के जज तक शरीक रहे हैं. तत्कालीन मुख्यमंत्री मायावती द्वारा अरबों रुपए के एक घोटाले की सीबीआई से जांच कराने का बाकायदा शासनादेश जारी किया गया था. इस पर सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन जज वाईके सब्बरवाल एवं बीएन अग्रवाल की बेंच ने केंद्र सरकार, सीबीआई और यूपी पावर कॉरपोरेशन को अंतिम मौका देते हुए प्रति-शपथपत्र दाखिल करने का आदेश दिया. लेकिन प्रति-शपथपत्र दाखिल नहीं हुआ. इस नाफरमानी पर सख्त संज्ञान लेने के बजाय सुप्रीम कोर्ट की उस बेंच ने मामला ही खारिज कर दिया. वही वाईके सब्बरवाल बाद में सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश बने थे. ■

लोगों को नागवार लगा मुलायम-परिवार के झगड़े का सार्वजनिकीकरण

परिवारवाद की राजनीति ख़ारिज करने का वक्त यही है

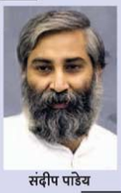

संदीप पांडेय

समाजवादी पार्टी डॉ. राम मनोहर लोहिया को अपना आदर्श मानती है. डॉ. लोहिया परिवारवाद की राजनीति को बढ़ावा देने के लिए जवाहर लाल नेहरू की कड़ी आलोचना करते थे. मुलायम सिंह यादव ने डॉ. लोहिया की इस नापसंदगी को सुविधाजनक तरीके से नजरअंदाज किया है. अभी कुछ दिनों पहले तक समाजवादी पार्टी के किसी भी विज्ञापन पर सिर्फ यादव परिवार के सदस्यों की ही तस्वीरें होती थीं, आमतौर पर मुलायम सिंह, अखिलेश यादव, शिवपाल यादव व रामगोपाल यादव की. समाजवादी पार्टी के किसी भी सदस्य जिसमें थोड़ा-बहुत भी आत्म-सम्मान होगा, के लिए यह कितनी शर्मिंदगी की बात है कि एक परिवार के सदस्यों को छोड़कर उनकी पार्टी में अन्य कोई नेता ही नहीं. ऐसा मान लिया गया था कि यदि आप यादव परिवार से नहीं हैं तो पार्टी के प्रति आपकी वफादारी संदिग्ध है. साफ तौर पर नेहरू-गांधी परिवार के उदाहरण से ही परिवारवाद की राजनीति करने वाले प्रेरित हुए हैं. इस परिवार ने कुछ अन्य परिवारों को प्रेरणा दी उनमें शेख अब्दुल्ला, जगजीवन राम, विजयाराजे सिंधिया, चौधरी देवी लाल, चौधरी चरण सिंह, राजेश पायलट, जितेन्द्र कुमार, शरद पवार, एम. करुणानिधि, लालू प्रसाद यादव, एनटी रामा राव, मुफ्ती मोहम्मद सईद जैसे लोग शामिल हैं, जिनके परिवार के सदस्यों ने उनकी राजनीतिक विरासत को आगे बढ़ाया. नेहरू-गांधी परिवार ने इस उप-महाद्वीप के अन्य परिवारों जैसे भुट्टो, शेख मुजीबुर्रहमान, हुसैन मोहम्मद इरशाद व भंडारानायके को भी परिवारवाद की राजनीति की प्रेरणा दी. अब तो भारत में यह आम बात है कि किसी राजनेता की पत्नी व बच्चे भी राजनीति में जोर-अजमाइश करते हैं. खासकर यदि कोई राजनीतिक पद किसी कारण रिक्त हो जाता है, तो उसके परिवार के सदस्यों को लगता है कि उनके परिवार के सदस्य का स्थान तो आरक्षित है. कोई अन्य उस पद के लिए अपनी दावेदारी पेश कर देता है, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है. बाहरी दावेदारी अंततः घुटने टेक देती है. यह हमारे समाज की सामंती मानसिकता प्रदर्शित करता है. यह सिर्फ राजनीतिक परिवार के सदस्य ही नहीं, बल्कि सामान्य लोग भी मान लेते हैं कि इस परिवार के अन्य सदस्यों का भी राजनीतिक पदों पर दावा बनता है. जनता द्वारा निर्वाचित होने पर परिवार के अन्य सदस्यों को अपनी दावेदारी को वैध ठहराने का मौका मिल जाता है. इनमें से कई की न तो कोई राजनीतिक प्रवृत्ति होती है और न राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक मुद्दों की समझ और वे अपने से काबिल उम्मीदवारों को जन प्रतिनिधि बनने के अवसर से वंचित कर देते हैं. भारतीय राजनीति में परिवारवाद ने जबरदस्त घुसपैठ कर ली है और उसके लोकतांत्रिक चरित्र पर भयंकर कुठाराघात किया है.

मुलायम सिंह के परिवार ने तो परिवारवाद की राजनीति की सारी हदें ही पार कर दी है. न सिर्फ पार्टी के सारे प्रमुख नेता एक ही परिवार से हैं बल्कि इस परिवार के चौदह सदस्य किसी न किसी स्तर पर जन प्रतिनिधि हैं. मुलायम सिंह की दूसरी पत्नी के बेटे की पत्नी अपर्णा यादव भी राजनीति में प्रवेश हेतु दरवाजा खटखटा रही हैं. पार्टी पर अपने परिवार का आधिपत्य जमा लेने का खामियाजा अब मुलायम सिंह को भुगतना पड़ रहा है. वह पुराने जमाने के राजपरिवारों में होने वाले सत्ता संघर्षों की भांति है. मुलायम सिंह को पार्टी के आंतरिक लोकतंत्र को खत्म करने व उसे अपनी जमींदारी की तरह चलाने की कीमत चुकानी पड़ेगी. अब उनकी पार्टी में इस कद का कोई नेता नहीं जो अपनी हैसियत से वर्तमान संकट का समाधान निकाल ले. पार्टी में सिर्फ मुलायम सिंह की ही चलती है. उनके सामने अपने बेटे व भाई में से एक को चुनने की कठिन चुनौती खड़ी है. इस स्थिति के लिए मुलायम सिंह खुद जिम्मेदार हैं. यदि आज पार्टी में अन्य वरिष्ठ नेता होते तो वे परिवार से बाहर जाकर कुछ समाधान खोज सकते थे. यह एक विचित्र बात है कि अभी भी समाधान परिवार के अंदर ही खोजा जा रहा है. आखिर क्यों जरूरी है कि मुलायम, अखिलेश और शिवपाल ही संभावित मुख्यमंत्री पद के दावेदार के रूप में देखे जाएं? क्या आजम खान और बेनी प्रसाद वर्मा जैसे वरिष्ठ नेता मुख्यमंत्री नहीं हो सकते? परिवार के लोगों के बीच विवाद सुलझाने का यह अच्छा तरीका हो सकता है कि परिवार के बाहर के किसी व्यक्ति को मुख्यमंत्री बनाया जाए. इससे यह भी साबित हो जाएगा कि समाजवादी पार्टी का नेतृत्व राजपरिवारों की तरह सिर्फ मुलायम सिंह के परिवार के सदस्यों तक ही सीमित नहीं हैं और यह परिवार अपने आप को एक लोकतांत्रिक ढांचे का हिस्सा मानता है. क्या मुलायम सिंह इतने समाजवादी हैं कि परिवार-प्रेम से ऊपर उठ कर सोचेंगे?

यदि यादव परिवार अपने झगड़े नहीं सुलझाता तो यह उनकी राजनीतिक पकड़ को कमजोर करेगा. यदि वे साथ रहते भी हैं तो विवाद के घाव कभी भरने वाले नहीं. पहले जैसी स्थिति तो अब नहीं रहेगी. चोटिल अहंकारों के साथ क्या वे काम कर पाएंगे? यदि वे अलग होने का फैसला लेते हैं, तो स्थिति और भी अनिश्चित रहेगी. सिर्फ मुलायम सिंह ही जनाधार वाले नेता हैं, जो जनता के मतों को आकर्षित कर सकते हैं. उम्र के इस पड़ाव में उनसे यह अपेक्षा करना कि वे पूरी पार्टी को अपने कंधों पर ले चलेंगे, उनके साथ ज्यादती होगी. शिवपाल हमेशा मुलायम की छत्रछाया में रहे हैं और स्वतंत्र नेता के रूप में उन्होंने अपने को स्थापित नहीं किया है. अखिलेश अनुभवहीन हैं. उनका न तो जमीनी जुड़ाव है और न ही मुद्दों की समझ. उनके कुछ निर्णय तो किसी भी अगली सरकार को वापस लेने पड़ेंगे. जैसे राज्य सरकार द्वारा दिए जाने वाले यश भारती पुरस्कार में पुरस्कार राशि ग्यारह लाख रुपए के साथ-साथ उन्होंने 50,000 रुपए मासिक पेंशन देने का भी निर्णय लिया है. यह तो जनता का धन बर्बाद करने का उनका अनोखा निर्णय था. जनता के धन को अखिलेश यादव ने मनमर्जी से खर्च किया है.

मुलायम परिवार के अंतर्कलह ने समाजवादी पार्टी को भारी क्षति पहुंचाई है. यदि परिवार पार्टी को चुनाव में नहीं बचा पाता है, तो यह भारत में सामंती-परिवारवाद की राजनीति के अंत की शुरुआत हो सकती है. यह उन अन्य परिवारों के लिए भी सबक रहेगा जो इस किस्म की राजनीति करते हैं. शायद मुलायम परिवार का झगड़ा होना जरूरी था, ताकि भारतीय राजनीति के एक बड़े कलंक, जिसने लोकतंत्र का मजाक बना कर रख दिया है, को मिटाया जा सके. ■

(लेखक मैगसेसे पुरस्कार विजेता हैं)

feedback@chauthiduniya.com

सपाई कलह के बीच मोदी और महोबा

डॉ. दिलीप अग्निहोत्री

सपा परिवार की आंतरिक कलह की सुर्खियों के बीच ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की महोबा रैली हुई. सपा विवाद की लोकरुचि वाली खबरों में मोदी की रैली को पर्याप्त जगह नहीं मिल सकी. सपा सरकार के एक चर्चित कैबिनेट मंत्री ने इसकी दिलचस्प व्याख्या की. ये मंत्री कुछ दिन पहले बर्खास्त हुए थे, दुबारा शामिल किए गए. उनका कहना था कि सपा में कोई विवाद नहीं है. जो दिखाया गया उसका अच्छा परिणाम यह हुआ कि मोदी की रैली को पर्याप्त कवरेज नहीं मिली. इस हास्यास्पद बयान को सपाई सियासत के स्तर के नजरिए से भी देखा जा सकता है.

मोदी ने महोबा में कुछ ऐसे मुद्दे उठाए जिनका उत्तर प्रदेश की राजनीति में दूरगामी प्रभाव होगा. उन्होंने बुंदेलखंड की बदहाली का जिक्र करते हुए उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्रों का तुलनात्मक ब्यौरा दिया. इस तुलना के व्यापक निहितार्थ हैं. मध्य प्रदेश सरकार ने बुंदेलखंड को मिले पैकेज का इस्तेमाल किया, लोगों की मुसीबत कम करने के लिए कारगर योजनाएं बनाईं, उनका समयबद्ध क्रियान्वयन सुनिश्चित किया. इसलिए मध्य प्रदेश का बुंदेलखंड वाला हिस्सा बदहाल नहीं है. वहां कम पानी वाली फसलों को प्रोत्साहन दिया गया. उन्हें लगाने में सरकार ने किसानों की सहायता की. प्रत्येक गांव में पक्की नालियां बनवाई गईं. इन्हें तालाब से जोड़ा गया. छोटे बांध बनाए

गए. इन सबसे पानी की उपलब्धता बढ़ी. जमीन में पानी का स्तर ऊपर हुआ. गुजरात बेकरी में उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड के नौजवान बड़ी संख्या में हैं, लेकिन मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड के लोग वहां काम के लिए नहीं जाते. स्पष्ट है कि मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड में रोजगार के साधन हैं. लेकिन उत्तर प्रदेश सरकार ने ऐसा नहीं किया. बुंदेलखंड उपेक्षित है, क्योंकि यह भ्रष्टाचार से जुड़ा है. खनन की लूट ने बुंदेलखंड को जर्जर बना दिया है. खनन का भ्रष्टाचार बिना सत्ता संरक्षण के चल ही नहीं सकता. उत्तर प्रदेश के चुनाव में बुंदेलखंड क्षेत्र में सत्ता का भ्रष्टाचार बड़ा मुद्दा बनने वाला है.■

feedback@chauthiduniya.com

तो इसलिए मोदी ने तय किया माणा नहीं जाना

राजकुमार शर्मा

चीन की सीमा से लगे भारत के आखिरी गांव माणा जाकर सीमा पर तैनात सैनिकों के साथ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के दीपावली मनाने और बद्रीनाथ धाम का उनका कार्यक्रम कांग्रेस की किचकिच के कारण टल गया. कार्यक्रम को आखिरी पल में टालने के पीछे उत्तराखंड के मुख्यमंत्री हरीश रावत के एक बयान को मुख्य कारण माना जा रहा है. रावत ने मोदी की यात्रा के ठीक पहले कहा कि इस बार के चुनाव में मोदी ऐसे ही शीर्षासन करते नज़र आयेंगे. मोदी सैनिकों के साथ दिवाली मनाने के कार्यक्रम को सियासी तौर पर विवादित नहीं बनाना चाहते थे, लिहाजा यह कार्यक्रम आखिरी वक्त पर टाल दिया गया. इसके बाद ही मोदी ने हिमाचल के किन्नौर जाकर सैनिकों के साथ दीवाली मनाने का निर्णय लिया. मोदी के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए उत्तराखंड के कई वरिष्ठ भाजपा नेता माणा गांव पहुंच भी चुके थे. चमोली जिला प्रशासन ने भी पूरी तैयारी कर ली थी. माणा गांव के भोटिया जनजाति के लोगों ने भी प्रधानमंत्री के आने की खुशी में पूरे गांव को सजा रखा था. सेना के जवान भी खुश थे. लेकिन सियासत ने उन सबकी खुशियों पर पानी फेर दिया. उत्तराखंड में भी उत्तर प्रदेश के साथ ही चुनाव होना है. दोनों राज्यों में राजनीतिक माहौल है. सारे राजनीतिक दल हर गतिविधि को राजनीतिक फ्रेम में कसकर देख रहे हैं. जबकि चीन सीमा पर भारत के आखिरी गांव में सैनिकों के साथ दीपावली मनाने का मोदी का कार्यक्रम गैर राजनीतिक था. सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के साथ-साथ मोदी का यह कार्यक्रम चीन के लिए सामरिक-संदेश भी देने वाला था, लेकिन उत्तराखंड के मुख्यमंत्री हरीश रावत ने इसकी संवेदनशीलता नहीं समझी. रावत के बयान की सियासी नजाकत समझते हुए मोदी ने कार्यक्रम टाल दिया और हरदा मौका चूक गए. मोदी ने हिमाचल प्रदेश के किन्नौर में जवानों के साथ दीवाली मनाई. पिछले साल मोदी ने अमृतसर के खासा में डोगराई वॉर मेमोरियल का दौरा किया था. वर्ष 2014 में मोदी ने दुनिया के सबसे ऊंचे सैन्य पोस्ट सियाचिन में जवानों के साथ दिवाली मनाई थी. मोदी की हिमाचल यात्रा को उत्तराखंड के लिए एक राजनीतिक झटके के तौर पर भी देखा जा रहा है. मोदी का दौरा स्थगित होना कांग्रेस सरकार के लिए राजनीतिक तौर पर नुकसानदेह साबित हुआ, क्योंकि देवभूमि के लोग मोदी की यात्रा स्थगित होने के लिए कांग्रेस सरकार को दोषी ठहरा रहे हैं.■

feedback@chauthiduniya.com

यश-भारती के यश पर सवाल

अनंत विजय

उत्तर प्रदेश के समाजवादी कुनबे में कलह जारी है. सियासत से लेकर अंत:पुर में खेले जाने वाले दांव-पेंच पर पूरे देश की नजर है. तमाम राजनीतिक विश्लेषक हर रोज रिश्तों की नई व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं. कोई मौजूदा मुख्यमंत्री अखिलेश यादव पर दांव लगा रहा है, तो कोई शिवपाल-अमर सिंह की जोड़ी के पक्ष में बैटिंग कर रहा है. इन तमाम सियासी कोलाहल के बीच साहित्य, कला और संस्कृति को लेकर भी उत्तर प्रदेश इन दिनों चर्चा में है. पिछले हफ्ते करीब डेढ़ दशक बाद संगीत नाटक आकदमी अवॉर्ड बांटे गए. दरअसल 2003 से लेकर 2008 तक के संगीत नाटक अकादमी पुरस्कारों का ऐलान महीनों पहले किया गया था, लेकिन पुरस्कार बांटे जाने को लेकर कोई तिथि तय नहीं की गई थी. जिनके नामों का पुरस्कार के लिए ऐलान हुआ था, वो भी अंधेरे में थे और कई तो बातचीत में निराशा भी जाहिर कर चुके थे कि उनको पुरस्कार नहीं मिल पाएगा. पिछले हफ्ते आनन फानन में इन पुरस्कारों को बांट दिए गया, लेकिन बताया जा रहा है कि कई पुरस्कृत शख्सियत वक्त पर इत्तला नहीं मिलने की वजह से मौके पर उपस्थित नहीं हो सके. खबरों के मुताबिक इस समारोह में 67 कलाकारों को अकादमी अवॉर्ड और बारह को अकादमी रत्न पुरस्कार दिया गया. इस सम्मान समारोह में पुरस्कृत कलाकारों-लेखकों की संख्या इतनी ज्यादा थी कि जल्दी-जल्दी नाम पुकारे जाने लगे, जिससे अव्यवस्था फैल गई. कलाकारों को पुरस्कार के तौर पर दिए गए ताम्रपत्र पर पुरस्कार राशि अंकित करने से भी कलाकारों में क्षोभ दिखा. पंडित शंभू महाराज के बेटों को 2003-04 के लिए अकादमी अवॉर्ड दिया गया. इन दोनों ने जब ताम्रपत्र पर दस हजार एक रुपए की राशि का अंकन देखा तो नाराज हो गए और कहा कि ताम्रपत्र पर राशि का उल्लेख गैरजरूरी है. भारी संख्या में बंटे इन पुरस्कारों को लेकर चर्चा अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि उत्तर प्रदेश सरकार ने थोक के भाव से यश भारती पुरस्कार बांट डाले. यश भारती पुरस्कार को लेकर इस बार इस वजह से सवाल खड़े हो रहे हैं कि पहले सरकार ने ऐलान किया था कि 54 लोगों को प्रदेश के सबसे बड़े पुरस्कार से नवाजा गया. हद तो तब हो गई जब पुरस्कार वितरण समारोह के दौरान दो लोगों के नाम जोड़े गए. यश भारती पुरस्कार अखिलेश यादव के पिता मुलायम सिंह यादव ने शुरू किया था और यह पुरस्कार साहित्य, कला, सिनेमा, चिकित्सा, खेल, पत्रकारिता, हस्तशिल्प, शिक्षण, संस्कृति, संगीत, नाटक और उद्योग के अलावा समाजसेवा और ज्योतिष विद्या के लिए भी दिया जाता है. इस पुरस्कार के तहत पुरस्कृत व्यक्ति को ग्यारह लाख नकद और आजीवन पचास हजार रुपए हर महीने पेंशन के तौर पर दिया जाता है. इस वर्ष के पुरस्कार वितरण समारोह से मुलायम सिंह यादव दूर रहे और उनके पुत्र मुख्यमंत्री अखिलेश यादव पूरे समारोह के दौरान मुलायम सिंह का नाम लेते रहे. उन्होंने तो यहां तक कहा कि नेताजी विभूतियों का सम्मान करने में कभी नहीं हिचके और उन्होंने घर तक जाकर उनको सम्मानित किया. इस संदर्भ में अखिलेश यादव ने हरिवंश राय बच्चन का उदाहरण दिया, जिन्हें यश भारती से सम्मानित करने के लिए मुलायम सिंह यादव मुंबई तक गए थे. बच्चन जी के स्वास्थ्य की वजह से मुंबई में उनके घर पर उनको यश भारती से सम्मानित किया गया था. हालांकि उसके बाद मुख्यमंत्री सम्मानित शख्सियतों के साथ मुलायम सिंह यादव के घर पहुंचे और सबकी उनसे मुलाकात करवाई.

ये तो हुई सियासत की बातें, लेकिन सियासत की बात यहीं खत्म नहीं होती है. सियासत या लापरवाही के संकेत तो यश भारती पुरस्कार से सम्मानित किए गए महानुभावों की सूची को देखने पर भी मिलते हैं. पुरस्कार वितरण समारोह के चंद दिनों पहले जो सूची जारी की गई उसमें बांदा के शिल्पकार शाहिद हुसैन का भी नाम था, लेकिन जब बांदा के जिलाधिकारी से शाहिद हुसैन को सूचना देने के लिए संपर्क किया गया तो जो बात पता चली उससे पुरस्कारों की सूची तैयार करनेवालों के होश उड़ गए. बांदा के जिलाधिकारी ने राज्य सरकार को सूचित किया कि शाहिद हुसैन नाम का कोई शिल्पकार उनके जिले में नहीं है. बांदा के डीएम ने अपने पत्र में किसी हामिद हुसैन के नाम का उल्लेख किया और बताया कि वो एक शिल्पकार के पास काम करते हैं. इस पत्र के बाद संस्कृति विभाग ने आनन फानन में शाहिद हुसैन का नाम पुरस्कृत होने वालों की सूची से हटा दिया. लापरवाही का आलम तो वरिष्ठ उर्दू शायर शारिब रुदौलवी के नाम के साथ भी देखने को मिला. विभागों की फाइल में उनका नाम शादाब रुदौलबी लिखा था और विभागीय लोग इस नाम के शख्स को ढूंढने में रात दिन एक किए हुए थे. बाद में पता चला कि उनका सही नाम शारिब रुदौलवी है. फिर जाकर सूची में संशोधन किया गया. दरअसल इस तरह के वाकए सरकारी विभागों में होते रहते हैं. कमलेश्वर के निधन के बाद आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में उनको निमंत्रण देने के लिए विदेश मंत्रालय के अफसरों ने उनके घर पर फोन किया था और बगैर कुछ बताए ये सूचना फोन उठाने वाले को दी और फोन रख दिया. गनीमत ये रही कि किसी तरह विदेश मंत्रालय को समय रहते कमलेश्वर के निधन की जानकारी मिल गई वर्ना उनका नाम भी सूची में प्रकाशित कर दिया गया होता.

अब अगर समग्रता में इस साल दिए गए यश भारती सम्मान से नवाजे गए लोगों की सूची पर नजर डालें, तो यह बात साफ तौर पर रेखांकित की जा सकती है कि सम्मानित विभूतियों में भी सामाजिक समीकरणों का ध्यान रखा गया है. संभव है कि मेधा को भी प्राथमिकता दी गई हो, लेकिन जिस तरह से नाम जोड़े और घटाए गए, उससे साफ है कि अकलियत से लेकर जातिगत समीकरणों का भी ध्यान रखा गया. पुरस्कारों के बहाने से राजनीतिक तौर पर समुदायों और जातियों को खुश करने की कोशिश भी दिखाई दे रही है. साहित्य, कला, संस्कृति, क्रिकेट, समाजसेवा और पत्रकारिता आदि के लिए यश भारती सम्मान के नामों का चुनाव करते वक्त अगले साल होने वाले विधानसभा चुनावों को भी ध्यान में रखा गया. वर्ना ये कैसे संभव था कि बांदा के एक ऐसे शिल्पकार का नाम सूची में घोषित कर दिया जाता जिस नाम का उस जिले में तो क्या पूरे सूबे में कोई शिल्पकार ज्ञात नहीं है. क्या सिर्फ नाम देखकर शाहिद हुसैन को पुरस्कार देना तय कर लिया गया. क्या ये जरूरी नहीं था कि संबंधित विभाग नामों का ऐलान करने के पहले उसकी जांच करवा लेता. संस्कृति विभाग के सचिव खुद बेहतरीन शायर हैं और कला संस्कृति और साहित्य जगत से गहरे जुड़े हुए भी हैं. बावजूद इसके ऐसा हुआ, तो इससे तो ये भी लगता है कि संस्कृति सचिव को ऊपर से नाम भेजकर उसका ऐलान करने को कहा जा रहा था. अपने स्तर से जब उन्होंने जांच करवाई, तो कई खामियां नजर आईं, लेकिन तबतक तो तीर कमान से निकल चुका था. सवाल यही उठता है कि इन पुरस्कारों को लेकर कोई ठोस पारदर्शी नीति क्यों नहीं बनाई जाती है. कोई मानक क्यों नहीं तय किया जाता है. जनता को ये क्यों नहीं बताया जाता कि अमुक नाम के चयन के पीछे की वजह ये रही है. क्या जनता के पैसे से दिए जाने वाले इन भारी भरकम पुरस्कारों के बारे में जनता को जानने का हक नहीं है. उत्तर प्रदेश के युवा मुख्यमंत्री की छवि अबतक साफ सुथरी है, लेकिन इस तरह के वाकयों से ये तो साफ होता है कि वो भी राजनीति की काली कोठरी में आकर उससे बचकर निकल नहीं पा रहे हैं. दरअसल, हमारे देश में पुरस्कारों को लेकर कोई ठोस नीति नहीं है. जैसे यूपी में तो यश भारती पुरस्कारों की संख्या भी निश्चित नहीं है. जो सत्ता में है, वो अपने जितने चाहे उतने चहेतों को पुरस्कृत कर सकता है. ये पुरस्कार भी सरकारी स्कीमों की तरह राजनीति की शिकार होती रही हैं. सत्ता बदलने पर पुरस्कार या तो बंद कर दिए जाते हैं या दिए ही नहीं जाते हैं. क्या सरकारें कोई ठोस नीति बनाकर इसको स्थायी नहीं कर सकती हैं जिसमें पारदर्शिता हो और पुरस्कारों की प्रतिष्ठा भी स्थापित हो सके. संगीत नाटक अकादमी और यश भारती पुरस्कार इतनी भारी संख्या में बांटे गए कि लगता है कि कोई बच ही नहीं पाएगा. रही सही कसर हिंदी संस्थान के पुरस्कार पूरी कर देते हैं. नब्बे के आखिरी दशक में दिल्ली में एक मजाक चलता था कि अगर करोलबाग में पत्थर फेंका जाए तो हर दूसरा जख्मी शख्स एमबीए डिग्रीधारक होगा. यही हाल उत्तर प्रदेश में पुरस्कारों को लेकर है. ■

(लेखक IBN7 से जुड़े हैं)
anant.ibn@gmail.com

करवीर (श्वेत/लाल)

परिचय

करवीर का वर्णन आयुर्वेद के कई प्राचीन निघण्टुओं में प्राप्त होता है. यह अत्यन्त विषाक्त पौधा होता है. पुष्प भेद से यह तीन प्रकार का होता है. राजनिघण्टु तथा निघण्टु रत्नाकर में काले करवीर का भी वर्णन प्राप्त होता है. भारत के प्राय: सभी प्रांतों में, हिमालय में कश्मीर से नेपाल तक लगभग 2000 मी की उंचाई तक यह प्राप्त होता है. विश्व में यह अफगानिस्तान, पाकिस्तान, चीन तथा जापान में भी मिलता है.

औषधीय प्रयोग मात्रा एवं विधि

- **शिरो रोग-** सफेद बालों को उखाड़ कर या मूल से काट कर उस स्थान पर दूध में पिसे हुए कनेर की मूल के कल्क का लेप करने से पालित्य का शमन होता है.
- समभाग हरीतकी, बहेड़ा, आंवला, कनेर मूल, विजयसार, भृंगराज तथा गुड़ की मसी बनाकर बालों पर लेप करने से पालित्य में लाभ होता है.
- **कुष्ठ-** कुष्ठ रोगी को सरसों के तेल की मालिश के बाद, आरग्वध, काकमाची (मकोय) का कनेर के पत्तों को तक्र में पीसकर लेप करना हितकर है.
- समभाग श्वेत कनेर मूल स्वरस तथा गोमूत्र, प्रत्येक चार भाग तथा चौथाई भाग चित्रक मूल एवं विडंग बीज के कल्क से सिद्ध एक भाग तैल (सरसों का तेल) को नियमित लगाने से कुष्ठरोग में अतिशय लाभ होता है.
- कनेर की मूल चूर्ण का लेप तथा मर्दन आदि रूप में प्रयोग या कनेर आदि द्रव्यों से सिद्ध तेल एवं घृत का प्रयोग कुष्ठ में हितकर है.
- कनेर के नवीन पत्र, मूल, त्वक् आदि का कल्क चौथाई भाग तथा चार गुना गोमूत्र से सिद्ध एक भाग सरसों के तेल की मालिश करने से कुष्ठादि त्वग् विकारों में लाभ होता है.
- करवीर- मूल, वत्सनाभ तथा गोमूत्र से सिद्ध तेल की मालिश करने से चर्मदल, सिध्म, पामा, विस्फोट, किटिभ तथा कृमि रोगों में लाभ होता है.
- **पामा-** कनेर के मूल, पत्र, छाल आदि के कल्क अथवा क्वाथ से सिद्ध तेल को लगाने से पामा में लाभ होता है.
- चिरबिल्व, चित्रक, कनेर आदि द्रव्यों को पीसकर व्रणशोथ या पक्व विद्रधि पर लेप करने से दारण होकर पूय का निर्हरण होता है.
- लाल करवीर के फल व मरिच को मिलाकर, पीसकर, तेल में पकाकर छानकर लेप रकने से पामारोग का शमन होता है.
- करवीर मूल को पीसकर घाव में लगाने से घाव जल्दी भरता है.
- शंखिनी, अंकोठ, सुमन, कनेर, सुवर्चला (हुरहुर) तथा आरग्वधादि वर्ग के द्रव्यों का क्वाथ बनाकर व्रण को धोने से व्रण का शोधन होता है.
- **अपस्मार-** श्वेत करवीर पत्र स्वरस का एक से दो बूंद नस्य लेने से अपस्मार में लाभ होता है.

***प्रयोज्यांग** : मूल, मूल त्वक् तथा पत्र.*

***मात्रा** : चूर्ण 30-125 मिग्रा अथवा चिकित्सक के परामर्शानुसार.*

***विषाक्तता**: यह अत्यंत विषाक्त क्षुप होता है. इसका मूल गर्भस्रावी होता है.* ■

आचार्य बालकृष्ण

और कितने रोहित?

लेखक
डॉ. रतन लाल

प्रकाशन
सम्यक प्रकाशन,
32/3, पश्चिमपुरी,
नई दिल्ली- 110063

मूल्य
200 रुपये

साईं वंदना

धर्म-स्थान एवं वेशभूषा

डॉ. चन्द्रभानु सतपथी

अक्सर जब मैं श्री शिरडी साईं बाबा के मंदिरों एवं बाबा से संबंधित समारोहों में जाता हूं और कभी-कभी वहां उपस्थित बाबा के भक्तों तथा मंदिर आने वाले आम लोगों के वेश एवं आचरण से संबंधित कुछ बातों पर मेरा ध्यान जाता है, तो स्थान एवं अवसर को देखते हुए वे मुझे उचित नहीं लगतीं. उच्चतर आध्यात्मिक सोच और समझ तो दूर की बात है, आम आदमी भी अपनी सामान्य समझ से यह बता सकता है कि किन अवसरों पर कैसे वस्त्र धारण करने चाहिए और कैसा आचरण होना चाहिए. ऐसे कुछ अवसरों- जैसे कि विवाह-समारोह, कार्यालयी सम्मेलन, शव-यात्रा और गोल्फ-प्रतियोगिता आदि पर विचार किया जा सकता है. क्या कोई व्यक्ति गोल्फ खेलने के वस्त्रों में किसी वैवाहिक कार्यक्रम में या किसी शव-यात्रा में जाने के लिए उपयुक्त वस्त्रों में व्यवसाय से संबंधित किसी औपचारिक कार्यक्रम में जा सकता है? इन विभिन्न अवसरों पर पहनी जाने वाली वेशभूषाओं का भिन्न-भिन्न विधान है. हमारी सभ्यता के इतिहास में इस तरह की अलग-अलग प्रकार की वेशभूषा का निर्धारण बहुत लंबे समय में धीरे-धीरे हुआ है, क्योंकि अवसर के अनुरूप ही उनके औचित्य का ध्यान रखा जाता है. इसके पीछे भावना यह है कि अवसर-विशेष के वातावरण में किसी के वेश अथवा आचरण द्वारा दूसरों को अटपटापन न लगे और सभी वहां पर सहजता का अनुभव कर सकें. साथ ही आसपास के अन्य लोग कैसा महसूस कर रहे हैं, इस बात का भी ध्यान रहे. मानवीय सभ्यता या सभ्य होने का अर्थ ही लोगों की भावनाओं तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए समझौता करना है. अत: ऐसे सामूहिक कार्यक्रमों में अवसर के अनुरूप ही उचित वेशभूषा धारण करना आवश्यक है.

अब हम तनिक इस बात पर ध्यान दें कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी जब धार्मिक समारोहों में भाग लेते हैं, तो वे किस प्रकार की वेशभूषा धारण करते हैं या वहां किस प्रकार आचरण करते हैं. ईसाई लोग जब गिरजाघर जाते हैं तो वे पूरी तरह से समुचित वेशभूषा धारण करते हैं. ठीक ऐसा ही सिक्खों, मुसलमानों, बौद्धों आदि के संदर्भ में भी देखा जाता है. जब भी भक्त मंदिर में होते हैं, तो उनके लिए जरूरी है कि वे अपना पूरा ध्यान एक विशेष प्रकार से अपने लक्ष्य/ध्येय के प्रति एकाग्र रखें. उदाहरणार्थ- नेत्र (जिनके माध्यम से वे अपने आराध्य के स्वरूप यानी मूर्ति पर ध्यान केंद्रित करते हैं), मुख (जिसके माध्यम से वे मंत्रोच्चारण करते हैं और अपने आराध्य की महिमा का बखान व प्रार्थना, आरती एवं भजन के माध्यम से करते हैं), कान (जिनसे वे मंत्र, आरती एवं प्रवचन आदि सुनते हैं), नाक (जिससे

वे अपने आराध्य पर अर्पित होने वाले पुष्प एवं धूप की मधुर सुगंध का अनुभव करते हैं) और त्वचा (जिससे वे अपने आराध्य या उसके चरणों का स्पर्श करते हैं). मंदिर के प्रशांत एवं पवित्र वातावरण में भक्तों के मानसिक क्षितिज/चेतना का विस्तार होता है और भक्त अपने में आनंदमयी और चेतना की एक विकसित अवस्था का अनुभव करते हैं. मंदिर में सबसे अच्छी स्थिति वह है, जिसमें कि भक्तों द्वारा मंत्रों या आरती का मधुर गुंजार सुना जा सके और उस स्थान पर अनावश्यक शोरगुल न हो. मंदिर का वातावरण ऐसा भी नहीं होना चाहिए, जहां कोई दुख या निराशा से भरा हुआ दिखलाई दे या जहां कोई रो रहा हो अथवा उदासी से अपना चेहरा लटकाए हुए हो. ऐसे भक्त जो विशुद्ध रूप से अपनी भौतिक कामनाओं के पूरा न होने के कारण उदास एवं मुंह लटकाए रहते हैं, वे मंदिर के सुखद एवं शांत वातावरण को नष्ट करते हैं. ■

जारी...

चौथी दुनिया ब्यूरो feedback@chauthiduniya.com

साईं भक्तों! आप भी चौथी दुनिया को साईं से जुड़ा लेख या संस्मरण भेज सकते हैं. मसलन, साईं से आप कब और कैसे जुड़े. साईं की कृपा आपको कब से मिलनी शुरू हुई. आप साईं को क्यों पूजते हैं. कैसे बने आप साईं भक्त. साईं बाबा का जीवन और चरित्र आपको किस तरह से प्रेरित करता है? साईं बाबा के बारे में अनेक किंवदंतियां हैं, क्या आपके पास भी कुछ कहने के लिए है? अगर हां, तो केवल 500 शब्दों में अपनी बात कहने की कोशिश करें और नीचे दिए गए पते पर भेजें.

सचिन का रिकॉर्ड तोड़ने की तरफ बढ़ रहे कोहली

विव की याद दिलाता है विराट का बल्ला

विश्व के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाजों में एक विराट क्रिकेट के हर फॉर्मेट में कमाल करते दिख रहे हैं. टेस्ट में वह टेस्ट की तरह बल्लेबाजी करते हैं जबकि वनडे में वह अपने बल्ले की ताकत अलग तरह से दिखाते हैं. उनकी हर पारी में टीम इंडिया की जीत की कहानी लिखी जाती है. दूसरी ओर टी-20 में बल्लेबाजी करने का उनका अंदाज एकदम बदल जाता है

सैयद मोहम्मद अब्बास

भारतीय टीम इस समय बेहद शानदार क्रिकेट खेल रही है. टेस्ट हो या वनडे, दोनों ही फॉर्मेट में टीम इंडिया हिट है. बल्लेबाजों से लेकर गेंदबाजों का प्रदर्शन गजब का रहा है. नये खिलाड़ियों ने भी अपना दम-खम दिखाया है. एक वक्त था जब भारतीय टीम सचिन के सहारे जीत का रास्ता तय करती थी, लेकिन सचिन के संन्यास के बाद अब वह जिम्मेदारी विराट के मजबूत कंधों पर है. विराट ने भी साबित किया कि उसमें सचिन से ज्यादा प्रतिभा है. हालांकि यह कहना भले ही अजीब लग रहा है कि वह सचिन से आगे जा सकते हैं. दरअसल वह जिस तेजी से रन बना रहे हैं उसे देखकर यही लग रहा है कि वह बहुत जल्द क्रिकेट के भगवान के रिकॉर्ड को भी छोटा कर देंगे. विराट क्रिकेट के तीनों वर्गों में करिश्माई खेल का प्रदर्शन कर रहे हैं. आंकड़े भी यही कह रहे हैं. विराट को आये हुए ज्यादा दिन नहीं हुए, लेकिन उनके बल्ले की धमक इस बात की मुनादी दे रही है. उनका रन बनाना टीम इंडिया की जीत की गारंटी बन जाता है. जिस दिन कोहली चले उस दिन भारत की जीत तय मानी जाती है. इतना ही नहीं अगर कोहली का बल्ला शांत रहा तो टीम इंडिया को जीत के लिए कड़ा पसीना बहाना पड़ता है. कीवियों के खिलाफ वनडे में इसका उदाहरण देखने को मिला.

न्यूजीलैंड के खिलाफ टेस्ट में कोहली की बल्लेबाजी बेहद शानदार रही थी, हालांकि शुरुआती टेस्ट में वे कुछ खास नहीं कर सके थे, लेकिन बाद में उन्होंने दोहरा शतक लगाकर सारा हिसाब बराबर कर दिया था. इसके बाद वनडे में भी कोहली का जानदार क्रिकेट जारी है. कीवियों के गेंदबाजों के होश उड़ चुके हैं, लेकिन उनका तोड़ उन्हें अभी तक नहीं मिला है. विश्व के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाजों में एक विराट क्रिकेट के हर फॉर्मेट में कमाल करते दिख रहे हैं. टेस्ट में वह टेस्ट की तरह बल्लेबाजी करते हैं जबकि वनडे में वह अपने बल्ले की ताकत अलग तरह से दिखाते हैं. उनकी हर पारी में टीम इंडिया की जीत की कहानी लिखी जाती है. दूसरी ओर टी-20 में बल्लेबाजी करने का उनका अंदाज एकदम बदल जाता है. भारतीय क्रिकेट के इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो कई बल्लेबाज आये और चले गये लेकिन सचिन नाम का सिक्का हमेशा चलता रहा. एक दौर था जब टीम इंडिया में सुनील गावस्कर की बल्लेबाजी की चर्चा होती थी. खासकर टेस्ट क्रिकेट में सुनील गावस्कर जैसा बल्लेबाज उस समय कोई नहीं था. हालांकि इस दौर में भी कई बड़े खिलाड़ी थे, जिनमें सबसे प्रमुख नवाब पटौदी, दिलीप वेंगसरकर जैसे बल्लेबाजों ने भी खूब वाहवाही लूटी. गुंडप्पा विश्वनाथ को भी नहीं भुलाया जा सकता. उनकी बल्लेबाजी करने का तरीका भी बेहद निराला था. उनकी तरह बाद में अजहर बल्लेबाजी करते दिखे. दरअसल वे कलाई की जादूगरी से भी सुर्खियों में रहे हैं. खैर यह बात बेहद पुरानी है. मौजूदा समय में हर कोई विराट की बल्लेबाजी की तारीफों के पुल बांध रहा है. इतना ही नहीं उनकी तुलना अब रिकॉर्ड पुरुष सचिन तेंदुलकर से की जा रही है. भारत के पिछले तीन साल के आंकड़ों को टटोला जाये तो विराट की बदौलत टीम इंडिया ने कई शानदार जीत अपनी झोली में डाली. कोहली आने वाले दिनों में इससे बढ़कर प्रदर्शन कर सकते हैं, ऐसी उम्मीद है. उन्हें टीम इंडिया का अब नया रन मशीन कहा जाने लगा है. शतकों की बात की जाये तो वह सचिन को बेहद आसानी से पीछे छोड़ सकते हैं. सचिन ने 463 वन डे में 49 शतक जमाकर भारत का मान बढ़ाया, जबकि पॉंटिंग ने 375 वन डे में 30 शतक जमाये थे. वहीं सनथ जयसूर्या ने 445 मैचों में 28 शतक जड़े थे. क्रिकेट के यह तीनों खलीफा अब संन्यास ले चुके हैं. ऐसे में विराट इन तीनों के रिकॉर्ड बड़ी आसानी ध्वस्त कर सकते हैं. कोहली का क्रिकेट करियर अभी केवल आठ साल का है, जबकि क्रिकेट पंडितों का मानना है कि वे बेहद आसानी से सात से आठ साल और खेल सकते हैं. न्यूजीलैंड के खिलाफ मोहाली वन डे में विराट कोहली ने शतक जमाकर साबित किया कि उनके खेल में लगातार सुधार हो रहा है. इस तरह से विराट ने अपने 174वें मैच में 26 वां शतक जमाया है. इतना ही नहीं उनके बल्ले से निकलने वाले शतक से अक्सर टीम इंडिया बेहद आसानी से जीत जाती है. लक्ष्य का पीछा करने में भारत को कोहली का साथ मिल जाता है. वनडे में 26 शतक जमाने वाले विराट ने लक्ष्य का पीछा करते हुए 16 बार सैंकड़ा जमाया है, तो उसमें 14 बार टीम इंडिया ने जीत हासिल की है. इसके साथ ही विराट ने सबसे तेज 26 शतक का रिकॉर्ड भी अपने नाम कर लिया. उनके प्रदर्शन को देख क्रिकेट के कई बड़े खिलाड़ी उनकी शान में कसीदे गढ़ रहे हैं. कुछ लोग उन्हें विवियन रिचर्ड्स से भी ज्यादा प्रतिभावान खिलाड़ी मान रहे हैं. मौजूदा समय में दक्षिण अफ्रीका के धांसू बल्लेबाज अमला 140 वनडे में 23 शतक लगाकर अपने बल्ले के सहारे वह विराट को चेता रहे हैं, लेकिन अभी यह कहना जल्दबाजी होगी कि वह विराट को कितनी चुनौती दे सकते हैं. यह बात भी सत्य है कि जिन मैचों में विराट सस्ते में आउट हो जाते हैं, वहां टीम इंडिया भी हार की कगार पर पहुंच जाती है.

क्रिकेट के इतिहास पर गौर किया जाये तो हर दशक में कोई न कोई सितारा पैदा होता है, जिसकी चमक से पूरा क्रिकेट जगत रौशन हो जाता है. कुछ गेंदबाजी में अव्वल होते हैं, तो कुछ बल्लेबाजी के पराक्रम में सबसे आगे होते हैं. 90 के दशक में कई गेंदबाजों ने बल्लेबाजों के छक्के छुड़ाये. उनमें सबसे पहले स्विंग के सुलतान वसीम अकरम का नाम सबसे पहले आयेगा. इसी दशक में कंगारुओं के भरोसमंद गेंदबाज ग्लेन मैरगा का नाम भी चर्चा में रहा. इस दशक में फिरकी के कई जादूगर स्पिनरों का नाम सामने आता रहा है, लेकिन बल्लेबाजी में सचिन से बड़ा कोई नाम नहीं है. हालांकि इस दौर में पॉंटिंग जैसे खिलाड़ी ने भी अपने बल्ले से विश्व क्रिकेट में अपनी अलग पहचान बनायी. इससे थोड़ा पीछे जायेंगे तो विवियन रिचर्ड्स का बल्ला बोलता था. कैरिबियाई टीम उनके सहारे कई यादगार जीत की गवाह बनी थी. विवियन रिचर्ड्स ने 187 वनडे में 6721 रन बनाये जबकि उनका औसत 47 का रहा है. विवियन रिचर्ड्स ने इस दौरान 11 शतक और 45 अर्धशतक जमाये. उनकी बल्लेबाजी का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1000, 3000, 5000 और 6000 तक पहुंचने वाले उस दौर के सबसे पहले खिलाड़ी वह थे. ऐसे में विराट से उनकी तुलना करना लाजमी इसलिए भी है, क्योंकि दोनों का खेलने का तरीका लगभग एक जैसा कहा जा सकता है. यानी मैदान पर हमेशा अपने बल्ले से विरोधी टीम को पस्त करने का मादा रखते हैं. विवियन रिचर्ड्स का स्ट्राइक रेट भी गजब का था. दूसरी तरफ विराट 174 वन डे में 7460 रन बना चुके हैं. उनका औसत भी करीब 52.90 का है जो बड़े खिलाड़ी बनने का संकेत देता है.

भारत में क्रिकेट की जब भी चर्चा होती है तो उसमें सचिन का नाम सबसे पहले लिया जाता है. सचिन के बल्ले के खौफ से दुनिया के कई गेंदबाज सदमे में रहते थे. वॉर्न जैसे स्पिनर सचिन के सामने आने से बचते रहे हैं. रिकॉर्ड भी इस बात का गवाह है कि सचिन भारत के सबसे बड़े गौरव हैं. उन्होंने टेस्ट क्रिकेट से लेकर वन डे में अपनी अलग छाप छोड़ी. सचिन ने 200 टेस्ट मैचों में 53.78 के औसत से 15921 रन बनाये जबकि इस दौरान उन्होंने 51 टेस्ट शतक लगाये. वन डे में उन्होंने 463 मैचों में 18426 रन बनाये. विराट ने टेस्ट क्रिकेट में अभी तक 48 मैचों में 3554 रन बनाये जबकि वनडे में अभी तक 174 मैचों में 7460 रन बनाये हैं. टेस्ट में उन्होंने 13 शतक लगाये जबकि वन डे में 26 शतक जड़ चुके हैं. ■

विवियन रिचर्ड्स

121 टेस्ट	8540 रन	24 शतक
187 वनडे	6721 रन	11 शतक

विराट कोहली

48 टेस्ट	3554 रन	13 शतक
174 वनडे	7460 रन	26 शतक

युवा ले रहे हैं विराट से प्रेरणा

टीम इंडिया वनडे में नम्बर वन बनने की ओर तेजी से कदम बढ़ा रही है. टीम में कई युवा चेहरे हैं, जो आने वाले समय में भारतीय बल्लेबाजी को मजबूत करेंगे. उनमें मनीष पांडेय, केदार जाधव, हार्दिक पांड्या जैसे नये खिलाड़ी शमिल हैं. इन खिलाड़ियों के पास यह अच्छा अवसर है कि वे विराट से कुछ सीख रहे हैं. मैच खत्म करने की आदत इन खिलाड़ियों को डालनी होगी. आने वाले समय में भारत को कई बड़े वनडे टूर्नामेंट खेलने हैं. अगर ये खिलाड़ी कामयाब होते हैं, तो इससे टीम इंडिया की बल्लेबाजी मजबूत होगी. धोनी इस समय नम्बर चार पर बल्लेबाजी कर रहे हैं, ताकि युवा खिलाड़ी दबाव में अच्छा प्रदर्शन करने की आदत डालें. माही भी चाहते हैं कि युवा खिलाड़ी अपनी जिम्मेदारी समझें. घरेलू स्तर पर शानदार क्रिकेट खेलने वाले युवा चेहरों के पास यह एक अच्छा मौका है कि वह टीम इंडिया में अपना दावा मजबूत कर सकें. ■

feedback@chauthiduniya.com

नहीं दिखेगा रेस-3 में सलमान का जलवा

पिछले दिनों सोशल मीडिया पर सलमान खान को लेकर कहा जा रहा था कि वे टिप्स फिल्म्स के बैनर तले बनने वाली निर्माता रमेश तौरानी की फिल्म रेस-3 में स्टाइलिश ख़लनायक की भूमिका में नज़र आएंगे. सलमान खान ने इस फिल्म की पटकथा पर निर्माता को काम करने का संकेत दे दिया है. लेकिन अब इन ख़बरों पर रेस और रेस-2 के निर्देशक अब्बास मस्तान का कहना है कि इन समाचारों में कोई सच्चाई नहीं है. यह मात्र अफ़वाह हैं. रेस की तीसरी कड़ी रेस-3 के लिए सलमान खान से अब तक संपर्क नहीं किया गया है, लेकिन फिल्मकारों का कहना है कि उन्हें बजरंगी भाईजान स्टार के साथ काम करने में खुशी होगी. वैसे भी ये कोई नहीं बात नहीं कि किसी फिल्म में बड़े स्टार के होने ना होने को लेकर अफवाह ना फैली हो. ■

अक्षय कुमार अब हॉकी खिलाड़ी बनेंगे

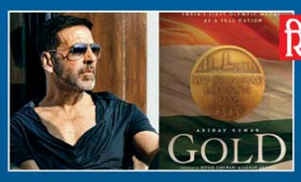

खिलाड़ियों का खिलाड़ी अक्षय कुमार अब हॉकी के मैदान में फुल फॉर्म में नज़र आने को तैयार हैं. वो देश के बेहतरीन हॉकी खिलाड़ी बन कर दे दनादन गोल करने वाले हैं. इस बात की तो पहले ही घोषणा की जा चुकी है कि अक्षय कुमार अब बड़े परदे पर हॉकी खेल की कहानी पर बनने वाली फिल्म *गोल्ड* में लीड रोल निभाएंगे. अब ख़बर है कि अक्षय का ये किरदार बलबीर सिंह का होगा जिन्हें गोल करने का उस्ताद माना जाता था. बलबीर सिंह अब 92 साल के हो चुके हैं और अपने पूरे परिवार के साथ कनाडा में रहते हैं. उनका जन्म आज के पाकिस्तान में हुआ था. बलबीर सिंह के नाम हॉकी में व्यक्तिगत तौर पर ओलंपिक में सबसे ज्यादा गोल करने का रिकार्ड है. साल 1952 ओलम्पिक खेलों में बलबीर सिंह ने उस मैच में पांच गोल किये थे जिसमे भारत ने नीदरलैंड को 6-1 से हराया था. बलबीर सिंह सीनियर के नाम से मशहूर इस खिलाड़ी ने बाद में भारतीय हॉकी टीम के मैनेजर और कोच के रूप में भी सेवाएं दी. साल 1977 में बलबीर सिंह ने द *गोल्डन हार्डस्टिक* नाम से अपनी आत्मकथा भी लिखी थी.

फिल्म *गोल्ड* ओलम्पिक में भारतीय खिलाड़ियों के 1948 लन्दन ओलम्पिक में हॉकी का गोल्ड मेडल जीतने की कहानी है. इस फिल्म का निर्देशन रीमा कागती कर रही है और फिल्म साल 2018 में 15 अगस्त को रिलीज़ होगी.■

अंकिता शौरी बनेंगी शाहरुख की हीरोइन

पूर्व फेमिना मिस इंडिया (2011) अंकिता शौरी को शाहरुख खान की आने वाली फिल्म *रईस* में एक भूमिका के लिए चुना गया है. जिसके लिए पाकिस्तानी अभिनेत्री माहिरा ख़ान को चुना गया था. मॉडल से अभिनेत्री बनी अंकिता ने कहा कि मैंने इस भूमिका के लिए लुक टेस्ट दिया, यह एक पाकिस्तानी मुस्लिम लड़की का किरदार है. फिल्म निर्देशकों को एक सही चेहरे की तलाश थी. मैंने इसकी पुष्टि के लिए छह महीने तक इंतजार किया. हालांकि यह आख़िरी पल पर हुआ बदलाव है.

इससे पहले ख़बर थी कि अंकिता की पुष्टि कर दी गई थी, उसकी जगह पर माहिरा को लिया गया था. अभिनेत्री ने कहा कि उसने सिर्फ़ लुक टेस्ट दिया था और कोई पुष्टि नहीं की गई थी.

हालांकि अंकिता के लिए शाहरुख के साथ शुरुआत एक बड़ी बात थी, लेकिन अंकिता को इस मौके को गंवाने को लेकर किसी के प्रति गलत भावना नहीं आई.

उन्होंने कहा कि एक मानव के रूप में मुझमें इसे लेकर एक उम्मीद थी और मुझे थोड़ा बुरा महसूस हुआ, लेकिन मेरा मानना है कि हर चीज़ की कोई वज़ह होती है. सिर्फ एक बात का अफ़सोस है कि मैंने एक्सल एंटरटेनमेंट और शाहरुख खान के साथ काम करने का अवसर खो दिया. माहिरा एक अच्छी अभिनेत्री हैं, मुझे विश्वास है कि उन्होंने अच्छा काम किया होगा. गुजरात के 1980 के दशक पर आधारित रईस का निर्माण एक्सल एंटरटेनमेंट और रेड चिलीज एंटरटेनमेंट ने किया है.

पलैश बैक

ऐश से जुड़ी कुछ ख़ास बातें जो आप जानना चाहेंगे...

ख़ूबसूरती की मिसाल ऐश्वर्या राय

हुस्न की मल्लिका ऐश्वर्या राय को कौन नहीं जानता, जिन्होंने सिर्फ सुंदरता ही नहीं बल्कि अपने दमदार अभिनय के बल पर लोगों के दिलों पर राज किया है. ऐश्वर्या ख़ूबसूरती की मिसाल हैं वो भी आज से नहीं पिछले 20 सालों से भी ज्यादा से. भले आज प्रियंका और दीपिका हॉलीवुड में बहुत नाम कमा रही हों, लेकिन असल में बॉलीवुड को दुनिया भर में पहचान ऐश ने ही दिलवाई. दुनिया भर में ऐश्वर्या के करोड़ों फैन्स हैं.

1997 का समय था, सलमान उस वक्त सुपरस्टार बन चुके थे. वहीं ऐश्वर्या ने मिस वर्ल्ड का खिताब जीतने के बाद बॉलीवुड में अभी एंट्री ही की थी. ये वो दौर था जब सलमान का दिल सोमी अली के लिए धड़कता था. उस दौर की फिल्मी मैग्जींस में छपी ख़बरों के मुताबिक सलमान सोमी को लेकर काफी सीरियस थे और उनसे शादी भी करना चाहते थे, लेकिन उसी वक्त सलमान की नज़र ऐश्वर्या पर पड़ी और सलमान का दिल कब सोमी को छोड़कर ऐश के लिए धड़कने लगा ये ख़ुद सलमान को नहीं पता चला. कहते हैं कि सलमान ने ऐश्वर्या का करियर बनाने का बीड़ा उठाया और कई प्रोड्यूसर्स से उनकी सिफ़ारिश भी की. सलमान की वज़ह से ही ऐश्वर्या को *हम दिल चुके सनम* जैसी बड़ी फिल्म मिली. सलमान के दोस्त संजय लीला बंसाली ने ऐश को इस फिल्म में ब्रेक दिया. यही वो फिल्म थी, जहां से सलमान और ऐश्वर्या की प्रेम कहानी की शुरुआत हुई. मैग्जींस में छपी ख़बरों के मुताबिक ऐश्वर्या के माता-पिता को ये रिश्ता मंज़ूर नहीं था, यहां तक कि उन्होंने सलमान से दूरी बनाने को कहा, जिससे वो इतनी नाराज़ हुई कि घर छोड़कर अकेले रहने लगीं.

जब ऐश स्कूल में थीं, उन्होंने अपने फेवरिट एक्ट्रेस से मुलाकात की थीं और वो एक्ट्रेस थी रेखा. एक बार रेखा ऐश के करियर के शुरूआती दिनों में मॉल में मिली थीं और खुद ही जाकर ऐश से मिलीं, क्योंकि रेखा को ऐश्वर्या राय इतनी ख़ूबसूरत लगी थीं कि उन्हें उनका चेहरा याद था.

अभिषेक और ऐश्वर्या की पहली मुलाकात 2000 में रिलीज़ *ढाई अक्षर प्रेम के* सेट पर हुई थी. कुछ सालों तक वे सिर्फ अच्छे फ्रेंड्स थे, क्योंकि ऐश सलमान खान के साथ रिलेशनशिप में थी. वहीं, अभिषेक की सगाई करिश्मा कपूर से हो चुकी थी. उस समय अभिषेक-ऐश्वर्या दोनों ने मिलकर फिल्म *ढाई अक्षर प्रेम के* और *उमराव जान* की. इसी दौरान दोनों के बीच नज़दीकियां बढ़ीं. कहा जाता है कि फिल्म *गुरू* के सेट पर अभिषेक ने ऐश्वर्या को प्रपोज किया था.अभिषेक ने इस बात का जिक्र भी किया था कि *मैंने धड़कते दिल से ऐश को प्रपोज किया और उन्होंने हां करने में एक सेकेंड का भी समय नहीं लिया.* वह लम्हा ऐश और अभिषेक दोनों की ज़िंदगी में ख़ास है. ऐश और अभिषेक 4 साल की बेटी आराध्या के प्राउड पेरेंट्स हैं.■

ऐश से जुड़ी कुछ ख़ास बातें

- ऐश ने अपना पहला विज्ञापन कैमिल ब्रैंड्स के लिए किया था और तब वो सिर्फ 9वीं क्लास में थीं.
- ऐश्वर्या राय बच्चन एक मात्र ऐसी भारतीय सेलेब्रिटी हैं, जिन्होंने पेप्सी और कोकाकोला दोनों प्रतिस्पर्धी ब्रांड का विज्ञापन किया है.
- अब तक चुनी गईं सभी मिस वर्ल्ड्स में वोटिंग के आधार पर ऐश को दो बार (2000, 2010) सबसे ज्यादा ख़ूबसूरत घोषित किया गया है.
- 1994 में जब ऐश्वर्या ने मिस वर्ल्ड का ख़िताब जीता तब उनसे इवेंट के होस्ट ने डेट के लिए पूछा था. इस ऑफर को उन्होंने ठुकरा दिया था.
- ऐश अपनी पढ़ाई पूरी कर मॉडलिंग में आना चाहती थीं. वो मेडिकल की पढ़ाई करना चाहती थीं और कॉलेज में जुलॉजी उनका फेवरिट सब्जेक्ट था. लेकिन ख़ूबसूरती की वज़ह से उन्हें तरह तरह के ऑफर मिलने लगे.
- ऐश्वर्या राय ब्रैड पिट के साथ ट्रॉय फिल्म करने से मना कर चुकी हैं.

> एक वक्त ऐसा था कि ऐश्वर्या और सलमान खान की प्रेम कहानी सबसे ज्यादा चर्चा का विषय बनी थी. उस दौर की फिल्मी मैग्जींस में छपी ख़बरों के मुताबिक सलमान सोमी को लेकर काफी सीरियस थे और उनसे शादी भी करना चाहते थे, लेकिन उसी वक्त सलमान की नज़र ऐश्वर्या पर पड़ी और सलमान का दिल कब सोमी को छोड़कर ऐश के लिए धड़कने लगा ये ख़ुद सलमान को नहीं पता चला.

चौथी दुनिया ब्यूरो feedback@chauthiduniya.com

जब आशा को यह कहकर मना कर दिया कि उनमें स्टार मटेरियल नहीं है

आशा पारेख को बचपन से ही डांस का शौक था. पड़ोस के घर में संगीत बजता, तो घर में उनके पैर थिरकने लगते थे. बाद में मां ने कथक नर्तक मोहनलाल पाण्डे से प्रशिक्षण दिलवाया. बड़ी होने पर वे पण्डित गोपीकृष्ण तथा पण्डित बिरजू महाराज से भरत नाट्यम में कुशलता प्राप्त कीं. अपनी नृत्यकला को आशा ने जन-जन तक फैलाने के लिए हेमा मालिनी एवं वैजयंती माला की तरह नृत्य-नाटिकाएं चोला देवी एवं अनारकली तैयार की और उनके स्टेज शो पूरी दुनिया में प्रस्तुत किए. उन्हें इस बात का गर्व है कि अमेरिका के लिंकन-थिएटर में भारत की ओर से पहली बार नृत्य की प्रस्तुति दी थीं.

स्कूल के एक कार्यक्रम में फिल्मकार बिमल राय ने आशा को फिल्म बाप-बेटी में एक छोटी भूमिका दी थी, लेकिन फिल्मकार विजय भट्ट ने अपनी फिल्म गूंज उठी शहनाई में आशा को यह कहकर मना कर दिया कि उनमें *स्टार मटेरियल* नहीं है.

आशा के करियर को संवारने-निखारने का काम डायरेक्टर नासिर हुसैन ने किया. वे उनकी लाइफ में एक तरह से गॉड फादर की तरह आए. वह उन दिनों शशधर मुखर्जी की फिल्म *दिल दे के देखो* के लिए नई तारिका की तलाश में थे. जिस दिन बात फाइनल हुई, उस दिन आशा का सत्रहवां जन्मदिन था. यह फिल्म जन्मदिन का गिफ्ट बनकर उनके जीवन में आई. 1959 से लेकर 1971 तक यानी कि *दिल दे के देखो* से लेकर कारवां फिल्म तक नासिर हुसैन गीत-संगीत से भरपूर रोमांटिक लाइट मूड की फिल्में बनाते रहे और आशा ने उनकी फिल्मों में मस्ती के साथ काम किया. नासिर हुसैन के अलावा दूसरे बैनर्स में काम करने से आशा की इमेज बदलने लगी. उन्हें सीरियसली लिया जाने लगा. राज खोसला निर्देशित मैं तुलसी तेरे आंगन की, दो बदन और चिराग, शक्ति सामंत की कटी पतंग ने उन्हें गंभीर भूमिकाएं करने तथा अभिनय प्रतिभा दिखाने के अवसर प्रदान किए.

शम्मी कपूर के साथ उनकी कैमिस्ट्री ख़ूब जमी और फिल्म तीसरी मंजिल ने तो कमाल कर दिखाया. फिल्मी दुनिया के कामगारों के कल्याण के लिए लंबी लड़ाइयां भी उन्होंने लड़ी है. वे छह साल तक सिने आर्टिस्ट एसोसिएशन की अध्यक्ष रहीं.

फिल्मों में हिंसा और अश्लीलता के दृश्यों पर जब आपत्तियां ली गई, तो आशा को आड़े हाथों लिया गया. सबसे बुरा अनुभव उन्हें शेखर कपूर से हुआ. उनकी फिल्म *बैंडिट क्वीन* जब सेंसर बोर्ड में पास होने आई, तो कुछ संवाद तथा सीन काटने के आदेश जारी हुए. फिल्म के डायरेक्टर शेखर कपूर मीडिया में गए और आशा पर अनेक तरह के आरोप लगाए. आशा ने उसका डटकर सामना किया. आखिर में फिल्म के निर्माता बेदी आगे आए और आशा ने जो कट्स सुझाए थे, उन्हें निकाल कर फिल्म भारत में रिलीज़ की.

फिल्मों में चरित्र नायिका के कुछ रोल करने के बाद आशा ने एक तरह से फिल्मों से संन्यास ले लिया. उन्होंने *कोरा कागज़* तथा *कंगन* जैसे पारिवारिक धारावाहिक बनाए और अपनी लोकप्रियता को जारी रखा.

उन्हें शादी नहीं करने का मलाल नहीं है. वह कहती हैं कि यदि शादी हो गई होती तो आज जितने काम वह कर पाई हैं उससे आधे भी नहीं हो पाते. वहीदा रहमान और नंदा से उनकी दोस्ती बड़ी मशहूर रही है. नंदा के गुजर जाने से वे उदास हैं.

आशा पारेख की प्रमुख फिल्मों में दिल देके देखो, आए दिन बहार के, आन मिलो सजना, आया सावन झूम के, कटी पतंग, कारवां, दो बदन, घराना, लव इन टोकियो, मेरे सनम, फिर वहीं दिल लाया हूं, तीसरी मंजिल, जब प्यार किसी से होता है, प्यार का मौसम, मेरा गांव मेरा देश, साजन, जिद्दी, हीरा, मैं तुलसी तेरे आंगन की, पगला कहीं का इसके अलावा दो गुजराती, दो पंजाबी और एक कन्नड़ फिल्म भी उन्होंने की है.■